दोहा शिक्षक धर्म प्रसिद्ध यहि, पढि नर शास्त्र विधान।
कृत्य अकृत्यन शुभ अशुभ, जानत वर मतिमान ॥१॥

अर्थ—श्रेष्ठ मनुष्य धर्मोपदेशमें प्रसिद्ध इस ग्रंथको शास्त्रानुसार पढकर कार्य अकार्य तथा शुभ अशुभ कार्यको जानता है ॥१॥

तदहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां हित काम्यया ॥ येन विज्ञान मात्रेण सर्व ज्ञत्वं प्रपद्यते ॥ ३ ॥

दोहा—नरगन की हितकामना, हितकहिहौं मैं ताहि।
प्राप्त होति सर्वज्ञता जानि यथा विधि जाहि ॥३॥

अर्थ—इसमें मनुष्योंकी हितकामनाके लिये कहूँगा, जिसके जाननेसे सर्वज्ञता प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेनच ॥ दुःखितै संप्रयोगेण पंडितोप्यवसीदति

दोहा—मूरख शिष्यहिं बोध दै, कारि पोषण खल नारि।
दुखिन संग व्यवहार करि, सहत कष्ट सुविचारि ॥४॥

अर्थ–मूर्ख शिष्यको उपदेश देनेसे, दुष्ट स्त्रीके पालन करनेसे, दुखियोंके संग व्यवहार करनेसे, पंडितभी दुखी होता है ॥ ४ ॥

दुष्टाभार्याशठंमित्रंभृत्यश्चोत्तरदायक
ससर्पेचगृहेवासो मृत्युरेव न संशयः॥५

दोहा–धंचक तिय खल मित्रजन, उत्तर दायक दास।
मरण नहीं संदेह यह, सर्प सहित गृह वास ॥ ५ ॥

अर्थ–दुष्टस्त्री, सठ मित्र, तथा उत्तर देनेवाला नौकर और सर्प सहित गृहमें निवास मृत्युही है, इसमें संदेह नहीं है ॥ ५ ॥

आपदर्थे धन रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ॥
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि॥ ६॥

दोहा–आपति हित रक्षहि धनहि,धनते अधिकी नारि
धन तिय ते अति रक्षही, आतमहि सदा विचारि ॥६।

अर्थ–विपत्तिके समयके लिये धनकी रक्षा करे, स्त्रीकी धनसे रक्षाकरे तथा अपनको निरंतर दारा तथा धनसभी रक्षा करे ॥ ६ ॥

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतश्च किमापदः ॥ कदाचिच्चलितालक्ष्मीःसंचिताऽपि विनश्यति ॥ ७ ॥

दोहा—धनधानन कहँ विपति कह धन रखहु हितकष्ट।
संचित चंचल लक्ष्मी, होत कदाचित नष्ट ॥ ७ ॥

अर्थ—आपत्तिके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये श्रीमंतोंकोभी क्या आपत्ति होती है हां, कदाचित चंचल लक्ष्मी होती एकत्र हुईभी नष्ट होजाती है ॥ ७ ॥

यस्मिन्देशेनसन्मानो नवृत्तिर्नचबांधवः ॥ नचविद्यागमोप्यस्तिवासस्तत्रनकारयेत् ॥ ८ ॥

दोहा—नाहिं आदर जिहि देश नाहिं, बंधु जीविका नाहिं।
विद्या आगम नहिं जिते, रहिये नाहिं तहाँहि ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस देशमें सम्मान नहीं है, न उपजीविका है, न बंधु हैं, और विद्या की प्राप्ति भी नहीं है वहाँ निवास न करे ॥ ८ ॥

धनिकःश्रोत्रियोराजानदीवैद्यस्तुपञ्चमः
पञ्चयत्रनविद्यंते न तत्रादिवसंवसेत ॥९॥

दोहा–श्रुति विद्याविद विप्र सरि, धनिक तथा नरपाल।
जित न पञ्च तित दिवस इक, नाँहिं काटिये काल॥९॥

अर्थ–धनवान, श्रुति निपुण ब्राह्मण, राजा, नदी, वैद्य, यह पाँच जहाँ नहीं हैं तहाँ एक दिन भी न रहे ॥ ९ ॥

लोकयात्राभयलज्जादाक्षिण्यत्याग शीलता ॥ पञ्चयत्र न विद्यते न कुर्य्यो त्तत्र संगतिम् ॥ १० ॥

दोहा–त्याग चतुरता भय शरम, आजीविका प्रसंग।
जित न पञ्च तितकीजिये, नाँहिं प्रीति कोढंग ॥१०॥

अर्थ–आजीविका, भय, लज्जा, चतुरता, त्यागशीलता, (ये) पाँच जहाँ नहीं हैं। तहाँ संगति न करे ॥ १० ॥

जानीयात्प्रेषणेभृत्यान् बांधवान्व्य-सनागमे ॥ मित्रंचापत्तिकालेतु भार्य्यांच विभवक्षये ॥ ११ ॥

(सार) भेजन कारज भृत्य बंधुजन, विपति आगमन मीहीं। आपत्ति मित्र समय और गहत त्रिय गम परखी जाहीं ११

अर्थ–कार्य के लिये भेजने में नौकरों की, दुःख के समय में बंधुओंकी, आपत्ति समय में मित्रोंकी, तथा विभव के नाश होनेमें स्त्रीकी परीक्षा करे ॥ ११ ॥

आतुरेव्यसनेप्राप्तेदुर्भिक्षेशत्रुसंकटे ॥
राजद्वारेश्मशानेचयस्तिष्ठतिसबांधव.

(सार) आतुरता दुख प्राप्ति समय दुर्भिक्षदार नृप जोई। संकट समय मसान ठाम महँ, निवहत बांधव सोई ॥ १२ ॥

अर्थ–रोगादिकों के समय आतुरता में, संकट के प्राप्त होनेमें, दुर्भिक्ष, तथा शत्रुद्वारा संकट उपस्थित होनेमें राजद्वार, तथा मसानमें जो सहायता देता है, वही बंधु है॥१२॥

योध्रुवाणिपरित्यज्यअध्रुवपरिसेवते ॥
ध्रुवाणितस्यनश्यन्तिअध्रुवनष्टमेवहि ॥

[सार। निश्चित त्यागि अनिश्चित सेवन करत अहहि जो कोई। निश्चित तासु नशात अनिश्चित नाशवन्त ही होई॥१३॥

अर्थ–जो निश्चित पदार्थोंको त्यागकर अनिश्चित पदार्थ

की सेवा करता है, उसका निश्चित पदार्थ नाश होजाता है और अनिश्चित तो नष्टही है ॥ १३ ॥

वरयेत्कुलजाप्राज्ञोविरूपामपिकन्य-काम् ॥ रूपशीलांननीचस्य विवाहः सदृशेकुले ॥ १४ ॥

दोहा—रूपहीन कन्या वरै, शुभ कुल की मतिमान ।
रूपवती नहिं नीचकी, समकुल ब्याह विधान ॥ १४ ॥

अर्थ–बुद्धिमान जन अच्छे कुलकी कुरूप कन्याको भी ब्याह ले, पर नीच की रूपवती कन्या नहीं (क्योंकि) विवाह समान कुल में होना चाहिये ॥ १४ ॥

नखीनांशस्त्रपाणीनां नदीनां शृङ्गिणां तथा ॥ विश्वासोनैवकर्त्तव्यः स्त्रीषु-राजकुलेषुच ॥ १५ ॥

दोहा—नखी सरित नारी तथा, अरु धारक हथियार ।
नहीं उचित विश्वास कृत, शृंगी वंश भुवार ॥ १५ ॥

अर्थ–नखवालों, नदियों, सींगवालों, शस्त्रधारियों, स्त्रियों राजकुलवालों का विश्वास न करे ॥ १५ ॥

विषादप्यमृतंग्राह्यम मेध्यादपिचंकांचनम ॥ नीचादप्युत्तमांविद्यांस्त्रीरत्नंदुष्कुलादपि ॥ १६ ॥

दोहा—अमिय गरल सम अशुचि थल, कंचन अति अभिराम । विद्या लीजै नीच सों, नीच वंश वर बाम ॥ १६ ॥

अर्थ-विष से भी अमृत, अपवित्र स्थान से भी सुवर्ण, नीच से भी उत्तम विद्या, नीच कुल से भी उत्तम स्त्री रत्न ग्रहण करना चाहिये ॥ १६ ॥

आहारो द्विगुण स्त्रीणांलज्जा चापिचतुर्गुणा ॥ साहसं षड्गुणञ्चैव कामश्चाष्टगुण स्मृत ॥ १७ ॥

दोहा—नारिन भोजन द्विगुण अरु, लज्जा चौगुन होत । साहस षट गुण अरु मदन, अठगुण होत उदोत ॥ १७ ॥

अर्थ-स्त्रियों का आहार द्विगुण, और लज्जा चौगुण होती है तथा साहस छःगुन, और काम अठगुन कहा है ॥ १७ ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः

अनृत साहस माया मूर्खत्वमतिलोभता ॥ अशौचत्वनिर्दयत्वंस्त्रीणांदोषाः स्वभावजाः ॥ १ ॥

दोहा—असत मूर्ख मति लोभ अति,साहस निरदयभाव
छल अशुद्धता नारिमें, अंगज दोष स्वभाव ॥ १ ॥

अर्थ-असत्य साहस, माया, मूर्खता, अति बहुत लालच; अशुद्धता निर्दयता स्त्री के स्वाभाविकदोष हैं ॥ १ ॥

भोज्य भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरांगना॥ विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपस फलम् ॥ २ ॥

दोहा-असत शुभगातिय अरु विभव,शक्ति सुभोजन मौंहि
दान शक्ति अरु शक्ति रति,लघु तप को फल नौंहि२॥

अर्थ-अच्छे भोज्यपदार्थमें भोजनकी शक्ति स्त्री प्रसंगकी सामर्थ्य श्रेष्ठ स्त्री; विभव और दानशक्ति अल्प तप का फल नहीं है ॥ २ ॥

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्य्या छन्दानुगामिनी ॥ विभवे यश्च सन्तुष्टस्तस्य स्वर्गइहैवहि ॥ ३ ॥

दोहा—जासु नारि अनुगामिनी तथा पुत्र वश आहि।
वैभव महँ जो सुखित, इत निश्चय सुरपुर ताहि ॥ २ ॥

अर्थ—जिसका पुत्र वशमें है, स्त्री अनुकूल है और जो विभव मे संतुष्ट है, उसे यहीं ही निश्चय स्वर्ग है ॥ ३ ॥

ते पुत्राये पितुर्भक्ता स पितायस्तुपोषक ॥तन्मित्रंयत्रविश्वास सा भार्या यत्रनिर्वृतिः ॥ ४ ॥

दोहा—जो पितु भक्त सुपुत्र सो जो पोषक पितु तौन।
वही मित्र विश्वास जित, सो तियसुखदा जौन ॥ ४ ॥

अर्थ—जो पिताके भक्त हैं, वेही पुत्र हैं, और जो पोषक है, वही पिता है, जहाँ विश्वास है, वही मित्र है, जिससे परम सुख हो वही भार्या है ॥ ४ ॥

परोक्षेकार्य्यहंतारंप्रत्यक्षेप्रियवादिनम्।
वर्ज्जयेत्तादृशमित्रंविषकुम्भंपयोमुखम्

दोहा—कार्य नशावत पीठ पर, कह सन्मुख मृदु बात
पय मुख विषघट सम हृदय,तजिय मित्र इमि नात।५।

अर्थ—पीठ पीछे काम बिगाडने वाले, सामने मिष्ट भाषी;
ऐसे मुख पर दूधके समान विष घट मित्रको त्यागदे ॥ ५ ॥

नविश्वसेत्कुमित्रेच मित्रेचापिनविश्व-
सेत् ॥ कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं
प्रकाशयेत् ॥ ६ ॥

दोहा—करहि भरोस न मित्र खल,अरु न मित्र विश्वास-
कुपित कदाचित मित्र सब,करहि रहस्य प्रकास ॥६॥

अर्थ—दुष्ट मित्रका विश्वास न करै, और मित्रकाभी सर्व
था विश्वास न करै, कदाचित कुपित मित्र सब गुप्त रहस्यों
को प्रगट करदेता है ॥ ६ ॥

मनसाचिंतितं कार्य्यं वाचा नैव प्रका-

शयेत् ॥ मंत्रेणरक्षयेद्गूढं कार्येचापि नियोजयेत् ॥ ७ ॥

दोहा—मन संकल्पित काजजनि, वाणीसन उच्चार ।
राखि गुप्तशुभ मन्त्रसों, तिहि कृत महँ निरधार ॥ ७ ॥

अर्थ—मनसे विचारे हुए कार्य को वाणी से प्रकाश न करे वरंच सम्मतिसे गुप्त रक्षित रक्खे, और कार्य में भी नियोजित करे ॥ ७ ॥

कष्टं च खलु मूर्खत्वं कष्टञ्च खलु यौवनम् ॥ कष्टात्कष्टतरं चैव परगेहेनिवासनम् ॥ ८ ॥

दोहा—मूरखता निश्चय दुखद, यौवन वंय दुखरास ।
अरु निश्चय दुखतर दुखद, पर अवास को वास ॥ ८ ॥

अर्थ—निश्चयही मूर्खता दुखदायक है, निश्चय युवावस्था कष्ट दायक है; और पराये घर रहना कष्टसे भी अति कष्टकर है ॥ ८ ॥

शैलेशैलेनमाणिक्य मौक्तिकंनगजेगजे,

साधवोनहिसर्वत्र चन्दनंनवनेवने ॥ ९ ॥

दोहा—माणिक गिरि गिरि होत नहिं, मुक्त गज गज नाँहिं। साधु पुरुष सब ठौर नाहिं, बन बन चंदन नाँहिं ९

अर्थ—पर्वत पर्वत प्रति माणिक्य नहीं होते, हाथी हाथीमें मुक्ता नहीं होते, साधुजन सर्वत्र नहीं होते; और वन वन में चंदन नहीं होते ॥ ९ ॥

पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्या सततं बुधैः ॥ नीतिज्ञा शीलसम्पन्ना भवति कुलपूजिता ॥ १० ॥

दोहा—सुतन शील युत बहु गुणन, युक्त कराई बुध लोग नीति विज्ञ बुध शील कुल होत सुपूजा योग ॥ १० ॥

अर्थ—पंडितों को पुत्रको अनेक प्रकारके शीलवाले गुणों से युक्त करना चाहिये वे नीतिके ज्ञाती शील संपन्न कुलमें पूजित होते हैं ॥ १० ॥

मातारिपु पिताशत्रुर्बालोयेननपा-

ठ्यते॥सभामध्येनशोभतेहंसमध्येब-कोयथा॥ ११॥

दोहा-जननी रिपु पितु शत्रु ते,जिन सन पढत न बाल
सभा माँहिं शोभत नहीं,जिमि बकमध्य मराल॥११॥

अर्थ—जिनके द्वारा बालक नहीं पढाया जाता, वह माता रिपु तथा पिता शत्रु है, वह बालक सभामें शोभा नहीं पाता; जैसे हंस के बीच बक॥ ११॥

लालनाद्बहवोदोषा॰ताडनाद्बहवोगुणा॰॥तस्मात्पुत्रंचशिष्यंच ताडयेन्नतु लालयेत्॥ १२॥

दोहा—लालन महँ अति दोष बहु,ताडन महँ गुण आहिं
सुत शिष्यन ताडन करहु लाले चाहिय नाहिं॥१२॥

अर्थ—प्यार करने से बहुत दोष हैं ताडना करने में बहुत से गुण हैं। तिससे पुत्रको और शिष्य को भी ताडन करै लालन न करे॥ १२॥

श्लोकेनवातदर्द्धेनतदर्द्धार्द्धाक्षरेणवा ॥

अवन्ध्यंदिवसकुर्य्याद्दानाध्ययनकर्मभि ॥१३॥

दोहा—इक श्लोकवा अर्ध तिहि तिहि आधे कर आध। दिवस सदैव वितावही, कारज पठन अवाध ॥ १३ ॥

अर्थ-एक श्लोकवेवा उसके आधे केवा उसके आधे के आधे के पढने के कार्य में निरंतर दिवस बितावे ॥ १३ ॥

कांतावियोग.स्वजनापमानोरणस्य शेष'कुनृपस्यसेवा॥दरिद्रभावोविषमासभाचविनाग्निमेतेप्रदहतिकायम् ।१४।

(छंद) तिय वियोग खल नृप सेवा; खल सभा स्वजन अप कार। दारिद्र युद्ध शेष भरि पद, तन करत अनल विन जार ॥ १४ ॥

टीका वियोग; सहदरोंसे निरादर तथा युद्ध मे शत्रु का शेष रहना, दुष्ट राजाकी सेवा दरिद्रता, और दुष्टोंकी सभा यह विना अग्नि शरीर के जलाते हैं ॥ १४ ॥

नदीतीरेचयेवृक्षा परगेहेपुकामिनी ॥

मन्त्रहीनाश्चराजान शीघ्रन्नश्यन्त्यस-
शयम् ॥ १५ ॥

दोहा—सरिततीर जो तरु तथा, नारी अपर अवास ।
सचिव हीन नृप शीघ्र ही, होत असंसय नास ॥ १५ ॥

अर्थ—जो वृक्ष नदी के तीर हैं, तथा दूसरे घरमें स्त्री और मंत्री विहीन राजा निःसंदेह शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥

बलंविद्याचविप्राणां राज्ञां सैन्यम्बल-
न्तथा ॥ बलंवित्तञ्चवैश्यानां शूद्राणा-
ञ्चकनिष्ठिका ॥ १६ ॥

दोहा—सेना बल नृपगन तथा, विद्या बल महिदेव ।
वैश्यन को बल धन तथा, शूद्रनको बल सेव ॥ १६ ॥

अर्थ—ब्राह्मणों का बल विद्या और राजाओं का बल सेना तथा वैश्योंका बल धन और शूद्रों का बल सेवा है ॥ १६ ॥

निर्द्धनपुरुषंवेश्याप्रजाभग्नन्नृपन्त्यजेत
खगवीतफलंवृक्षम्भुक्त्वाचाभ्यागतो
गृहम् ॥ १७ ॥

दोहा—नृप असक्त त्यागत प्रजा, निर्धन वेश्या वाम।
फल विहीन तरु खगपती, भोगि भोजन धाम ॥ १७ ॥

अर्थ—निर्धन पुरुषको वेश्या शक्तिहीन राजाको प्रजा फलोंसे नष्ट वृक्ष को पक्षी भोजन किये अरको अभ्यागत त्याग देते हैं ॥ १७ ॥

गृहीत्वादक्षिणांविप्रास्त्यजन्तियजमानकम्॥प्राप्तविद्यागुरुंशिष्यादग्धारण्यम्मृगास्तथा ॥ १८ ॥

दोहा—विद्यालहि के शिष्य गुरु, कानन दग्ध मृगान।
त्यागिदेत द्विज दर्ये गन; दान लेय यजमान ॥ १८ ॥

अर्थ—विप्रगण दक्षिणा ग्रहण करके यजमानकी, विद्या प्राप्त करके गुरुको शिष्य तथा दग्ध वन को मृगा त्याग देते हैं ॥ १८ ॥

दुराचारीदुरादृष्टिर्दुरावासीचदुर्जनः ॥ यन्मैत्रीक्रियतेपुम्भिर्नरः शीघ्रविनश्यति ॥ १९ ॥

दोहा—कुचाल निवासी दुष्ट मति, दुष्ट दृष्टि अघभौन।
संग करत जो मित्रता, शीघ्र नशत नर तौन ॥ १९ ॥

अर्थ—दुराचारी, दुष्ट दृष्टि, अयोग्य स्थान में बसने वाला दुर्जन से जो पुरुष मित्रता करता है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥

समानेशोभतेप्रीतीराज्ञिसेवाचशोभते
वाणिज्यंव्यवहारेषुस्त्रीदिव्याशोभतेगृहे ॥ २० ॥

दोहा—सोहत प्रीति समान महँ, सोहत सेव नृपाल।
सुव्यवहार महँ वणिज अरु गृह सोहत शुभबाल २०

अर्थ—प्रेम समान में शोभा पाताहै, और राजा की सेवा शोभा पाती है। व्यवहार वाणिज्य में तथा सुंदर स्त्री घर में शोभा पाती है ॥ २० ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्याय. ॥ २ ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

कस्यदोष कुलेनास्तिव्याधिनाकेन-पीडिताः॥ व्यसनकेननप्राप्तं कस्यसौख्यनिरंतरम् ॥ १ ॥

दोहा—किहि कुल महँ नाहिं दोषको,पीडितव्याधि न काहि।काहि प्राप्त दुख नाहिं भयो,किहिसुखरहोसदाहि॥

भर्थ—किसके कुलमें दोष नहीं है कौन व्याधि से पीडित नहीं है। किसको दुःख नहीं प्राप्त हुआ तथा किसको निरंतर सुख था है॥ १॥

आचार कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम् ॥ सम्भ्रम स्नेहमाख्याति वपुराख्यातिभोजनम् ॥ २ ॥

दोहा—कुल प्रगटत शुभ आचरण,भाषण प्रगटत देश। प्रगटत प्रेमहिं मोह अरु,भोजन प्रगटत वेश ॥ २ ॥

भर्थ आचारण कुलको प्रगट करता है भाषण देशको प्रगट

करता है। और प्रेमको प्रगट करता है, शरीर-भोजन को प्रगट करता है॥ २॥

सुकुलेयोजयेत्कन्यांपुत्रविद्यासुयोजयेत ॥ व्यसनेयोजयेच्छत्रुमिष्टंधर्मेणयोजयेत् ॥ ३ ॥

दोहा—कन्या व्याहत कुल माँहि विवाहै, सुतहि सुविद्या देहीं॥मित्रहिं धर्म पथ महँ लावै, शत्रुहिं आपति देहीं ३

अर्थ—कन्या को अच्छे कुलमें योजित करै पुत्रको विद्या युक्त करै: शत्रु को व्यसमें योजित कर मित्रको धर्ममें तत्पर करै॥ ३॥

दुर्जनस्यचसर्पस्यवरंसर्पोनदुर्जनः सर्पोदंशतिकालेतुदुर्जनस्तुपदेपदे ४

दोहा—दुर्जन महँ अहि माँहि अहि, भलोकुटिल नर माँहि। सर्प समय पर डसत, पर दुर्जन पद पद माँहि ४

अर्थ—दुर्जन में और सर्प में सर्प अच्छा है दुर्जन नहीं सर्प किसी समय में काटता है पर दुर्जन तो पद पद में॥ ४॥

एतदर्थंकुलीनानांनृपाःकुर्वन्तिसंग्रहम्॥
आदिमध्यावसानेषुनत्यजंतिचतेनृपम्

दोहा—याहीं ते शुभ कुल मरन, संग्रह करत भुपाल।
त्यागत नहिं नरपतिहिं यें, आदि मध्य इतिकाल॥५॥

अर्थ-इसी लिये राजा कुलीन पुरुषोंका संग्रह करते हैं (क्योंकि ये आदि मध्यतथा अंत में राजाको नहीं त्यागते॥५॥

प्रलयेभिन्नमर्यादाभवतिकिलसागरा
सागराभेदमिच्छंतिप्रलयेऽपिनसाधवः

दोहा—सागर सब मर्याद हत, प्रलय माँहिं व्है जाँहिं।
उदधि भेद चाहत प्रलय, पर सज्जन जन नाँहिं॥६॥

अर्थ-निश्चयही सागर प्रलयमें भिन्न मर्याद होजाते हैं सागर प्रलय में मर्यादा उर्लंघन की इच्छा करते हैं पर सज्जन नहीं॥६॥

मूर्खस्तुपरिहर्त्तव्य प्रत्यक्षोद्विपदःपशु
भिद्यतेवाक्यशल्येनअदृशंकंटकंयथा।

दोहा–शठहिं त्यागिबो चाहिये, पशु द्विपाद प्रत्यक्ष।
बचन शल्य हुमि भेदही, जिमि कंटक बिन अक्ष ॥७॥

अर्थ–मूर्ख को तो त्याग नाही चाहिये [क्योंकि) वह प्रत्यक्ष] ही] द्विपद पशु है [हृदयको] वाणी रूपी काँटे से इस प्रकार भेदता है जैसे बिना नेत्र वाले को कण्टक॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवा॰ ॥ विद्याहीना न शोभते निर्गंधा-इव किंशुका ॥ ८ ॥

दोहा–उत्तम कुल सम्भव पुरुष, गौर रूप महान।
विद्या बिन सोहत नहिं, टेसू पुष्प समान ॥ ८ ॥

अर्थ–रूप यौवन संपन्न, अच्छे कुलमें उत्पन्न पुरुष बिना विद्याके गंध रहित टेसू पुष्प के समान शोभा नहीं पाते ॥८॥

कोकिलानांस्वरोरूपंस्त्रीणांरूपंपतिव्रतं
विद्यारूपंकुरूपाणांक्षमारूपंतपस्विनां

दोहा–कोकिल कर शुभ रूप स्वर पातिव्रत तिय रूप।
विद्या रूप कुरूप नर, क्षमा तपस्विन रूप ॥ ० ॥

अर्थ-मीठी वाणी कोकिलाओं का रूप है पतिव्रत स्त्रियों का रूप है कुरूपों का विद्या रूप है तथा तप स्त्रियोंका क्षमा रूप है ॥ ९ ॥

त्यजेदेककुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थेकुलत्यजेत ॥ ग्रामजनपदस्यार्थे आत्मार्थेपृथिवींत्यजेत ॥ १० ॥

दोहा—कुलहित त्यागहि एक अरु; कुल त्यागहि हित-ग्राम॥ग्राम देश हित लगि तजै,आत्महेतु जगधाम १०

अर्थ-कुलके अर्थ एक का त्याग करे, ग्राम के लिये कुल का त्याग करे, देशके लिय ग्राम का त्याग करे, आत्मा के अर्थ पृथ्वीका त्याग करे ॥ १० ॥

उद्योगे नास्तिदारिद्र्य जपतोनास्ति पातकम् ॥ मौनेनकलहोनास्तिनास्तिजागरितेभयं ॥ ११ ॥

दोहा—किय उद्योगदरिद्रना, जपते भय नहिं आहिं। नहिं मौन ते कलह अरु, जागत महँ भय नाहिं॥११॥

अर्थ—उपोग करनेसे दारिद्र नहीं रहता, जपने से भय नहीं रहता, मौन रहने से कलह नहीं होती जागने से भय नहीं रहता ॥ ११ ॥

अतिरूपेणवैसीताअतिगर्वेणरावण. ॥ अतिदानाद्बलिर्बद्धोह्यतिसर्वत्रवर्जयेत

दोहा—रावण मारो गर्व अति, सिया हरन अति रूप। अति सब विधिवर्जितहि बँधे अतिहि दान बलि भूप १२

अर्थ—अधिक रूपके कारण जानकी हरी गईं, अति गर्वसे रावण मारा गया, अत्यंत दानसे बलि बाँधे गये। किंवदु अति करना सर्वत्र वर्जित करे ॥ १२ ॥

कोहिभार समर्थानां किंदूरंव्यवसायिनां॥कोविदेश. सविद्यानां क. प्रियः प्रियवादिनां ॥ १३ ॥

दोहा—को विदेश विधा धरम, काह समरथनभार। व्य वसायिन को दूर कै, और प्रिय भाषणहार ॥ १३ ॥

अर्थ—सामर्थवान पुरुषोंको अधिक भार क्या है व्यवसा

पियोंको कौन [स्थान] दूर है । अच्छी विद्या धारियोंको विदेश कहाँ है । प्रिय वादियोंको कौन अप्रिय है ॥ १३ ॥

एकेनापिसुवृक्षेण पुष्पितेनसुगंधिना ॥
वासितंतद्वनंसर्वं सुपुत्रेणकुलंयथा॥१४॥

दोहा—पुष्पवान तरु एक सन जाकी सुखद सुवास ।
होत सु वासित बहु सुबन, जिमिकुलसुतगुणरास॥१४॥

अर्थ—फूले हुये सुगंधिवाले एक ही सुवृक्ष से वह सब वन सुवासित होता है, जैसे सुपुत्र से कुल ॥ १४ ॥

एकेनशुष्कवृक्षेण दह्यमानेनवन्हिना ॥
दह्यतेतद्वनंसर्वं कुपुत्रेणकुलंयथा ॥ १५॥

दोहा—पातपुष्प बिन एकही, तरु सों जरत अँगार ।
खलसुत सन जिमिकुलनथा, हो सबबन वह छार१५

अर्थ—अग्निसे जलते हुए एकही सूखे वृक्ष से वह सब वन जल जाता है, जैसे कुपुत्र से कुल ॥ १५ ॥

एकेनापिसुपुत्रेण विद्यायुक्तेनसाधुना॥
आह्लादितंकुलंसर्वं यथाचन्द्रेणशर्वरी॥१६

दोहा—एकहि विद्या सहित सुत, सज्जन सुमति उदार।
जिमि रजनी शशि सों सकल, मुदित होत परिवार १६

अर्थ—विद्या से युक्त श्रेष्ठ एकही सुपुत्र से सब कुल प्रसन्न होता है जैसे चंद्रमा से रात ॥ १६ ॥

किंजातैर्बहुभि पुत्रैः शोकसंतापकारकै।
वरमेक कुलालंबीयत्रविश्राम्यतेकुलं १७

दोहा—शोक क्लेश दायक अमित सुवन भयेका काम।
जिहित कुल विश्रामलह इक कुल प्रियअभिराम ।१७।

अर्थ—शोक संताप देने वाले उत्पन्न हुए बहुत से पुत्रों से क्यारे एकही कुलको सहारा देने वाला अच्छा है जिससे कुल विश्राम को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

लालयेत्पञ्चवर्षाणिदशवर्षाणिताडयेत
प्राप्तेतुषोडशेवर्षेपुत्रेमित्रत्वमाचरेत ॥

दोहा—सुत ताडन दशवर्ष लौं, पंचवर्ष लौं प्यार। प्राप्त वर्ष षटदश करहि, मीतसरिस व्यवहार ॥ १८ ॥

अर्थ–पाँच वर्ष पर्यन्त प्यार करे, दश वर्ष तक ताड़ना दे और सोलहवें वर्ष में प्राप्त होने पर पुत्र से मित्र के समान व्यवहार करे ॥ १८ ॥

उपसर्गेऽन्यचक्रेचदुर्भिक्षेचभयावहे ॥
असाधुजनसंपर्के य:पलायतिजीवति॥

दोहा–भयदायक दुर्भिक्ष अरु, संग असज्जन जौन
अरि संग्राम उपसर्गमहँ, भागत जीवत तौन ॥ १९ ॥

अर्थ–उपद्रव होने पर शत्रुके आक्रमण होनेपर, और भयानक दुर्भिक्ष में तथा दुष्टों की संगति होने पर जो भाग जाता है वही जीता है ॥ १९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषुयस्यकोऽपिनविद्यते
जन्मजन्मानिमत्येषु मरणंतस्यकेवलं॥

दोहा–काम अर्थ गति धर्म मह, जाके एकहु नाँहि ।
ताकर केवल मरण फल, जन्म योनि नर माँहि ॥२०॥

अर्थ–जिनके धर्म अर्थ (तथा) काम मोक्षमें एकभी नहीं

शिशुम्पालयतेनित्यतथासज्जनसंगति

दोहा—मत्सी कूर्मी पक्षिणी, करत नित्य सुत प्यार।
दर्शन पर्शन ध्यान ते, सगति तथा उदार ॥ ३ ॥

अर्थ—मछली, कच्छपी, तथा पक्षिणी दर्शन ध्यान स्पर्श से नित्य बालक का पालन करती है, तैसेही सज्जन संगति॥३॥

यावत्स्वस्थोह्ययंदेहो यावनमृत्युश्चदूरत ॥ तावदात्महितंकुर्यात्प्राणांतेकिंकरिष्यति ॥ ४ ॥

दोहा—मरन दूर जबलौं तथा, जबलौं देह निरोग।
आत्म हेत तबलौं करहु, करहुक प्राण वियोग ॥ ४ ॥

अर्थ—जब तक यह देह निरोग है जब तक मृत्यु दूर है तब तक आत्माका हित कर, प्राणके अंत समय क्या करेगा ॥ ४ ॥

कामधेनुगुणाविद्या ह्यकालेफलदायिनी ॥ प्रवासेमातृसदृशी विद्या गुप्तं धन स्मृतम् ॥ ५ ॥

दोहा—विद्या गुणद अकालमहँ, सुरभी देव समान
वेर्घाहि माघ्यो गुप्त धन, परपुर मातु समान ॥ ५ ॥

अर्थ-विद्या काम धेनु के समान गुण करने वाली अ
कालमें भी फलदायिनी, तथा प्रवास में माताके समान है,
[इसी से] विद्याको गुप्त धन कहा है ॥ ५ ॥

एकोऽपिगुणवान्पुत्रो निर्गुणैश्च शतै
रं ॥ एकश्चंद्रस्तमोहंति न च तारा
सहस्रश ॥ ६ ॥

दोहा—निर्गुण सहसन ते परम, एक सुपुत्र उदार।
एक चन्द्र तम नाशही, उडगन नहिं हजार ॥ ६ ॥

अर्थ-एक भी गुणवान पुत्र निर्गुण सैकड़ो से भी श्रेष्ठ
है। एक चंद्रमा अंधकार का नाश करता है सहस्रो तारे नहीं।

मुर्खश्चिरायुर्जातोऽपितस्माज्जातमृतो
वर. ॥ मृत सचाल्पदु खाय यावज्जीव
जडोदहेत ॥ ७ ॥

अर्थ–राजा एक बारही आज्ञा देते हैं, पंडित एक बारही कहते हैं, कन्या भी एक बारही दी जाती है यह तीन एक एक बारही होते हैं ॥ ११ ॥

एकाकिनातपोद्वाभ्यां पठनगायनंत्रिभि· ॥ चतुर्भिर्गमनक्षेत्रंपञ्चभिर्बहुभीरणम् ॥ १२ ॥

दोहा–इक से तप दुइसंगपठन, चारि संग मधि बाट।
कृषी पच संग गान त्रय, बहु संग कर रण ठाट ।१२।

अर्थ–अकेले से तप, दो जनोंसे पढना, तीन जनोंसे गाना चार आदमियोंके संग चलना पांच आदमियोंके सहित खेती तथा बहुत आदमियोंके संग रण करना भला होता है ॥ १२ ॥

साभार्यायाशुचिर्दक्षा साभार्यायापतिव्रता ॥ साभार्यायापतिप्रीतासाभार्यासत्यवादिनी ॥ १३ ॥

छन्द–वही नारि जो दक्ष तथा शुचि पतिव्रत नारी। सत्यवादिनी नारि जौन सो यह तिय जो पति प्यारी ॥ १३ ॥

अर्थ—वही स्त्री है, जो पवित्र है, तथा चतुर है वही स्त्री है जो पतिव्रता है वही स्त्री है जो सत्यवादिनी है ॥ १३ ॥

अपुत्रस्यगृहंशून्यं दिशः शून्यास्त्वबांधवाः ॥मूर्खस्यहृदयंशून्यंसर्वशून्यादरिद्रता ॥ १४ ॥

[सोरठा] मूरख को हिय शून्य, पुत्रहीन कर शून्य गृह दिशा बंधुहिं शून्य, दरिद्रता महँ शून्य सब ॥ १४ ॥

अर्थ—पुत्रहीन का गृह शून्य है, बंधु विहीनों की दिशाएं सूनी हैं। मूर्खका हृदय शून्य है, तथा दरिद्रता सर्व शून्य है (अर्थात् दरिद्रता में सर्वत्र शून्य दीसता है) ॥ १४ ॥

अनभ्यासेविषंशास्त्रमजीर्णेभोजनंविषं दरिद्रस्यविषंगोष्ठीवृद्धस्यतरुणीविषम्॥

दोहा—बिन अभ्यास सु शास्त्र विष सभा हेतु विष दीन विष अजीर्ण महँ असन विष, वृद्धहिं नारि नवीन १५

अर्थ—विना अभ्यास के शास्त्र विष है, अजीर्ण होनेमें भोजन विष है, दरिद्र का सभा विष है वृद्ध को युवास्त्री विष है ॥ १५ ॥

त्यजेद्धर्मन्दयाहीनंविद्याहीनंगुरुन्त्य-
जेत त्यजेत्क्रोधमुखीम्भार्यान्निःस्ने-
हान्बांधवांत्यजेत् ॥ १६ ॥

दोहा—दयारहित धर्महिं तजहिं, गुरु तज विद्याहीन ।
तजै नारि रिसमुख तजै, बाँधव नेह विहीन ॥ १६ ॥

अर्थ—दयाहीन धर्म का त्याग करे, विद्यासे हीन गुरूका त्याग करे, क्रोध मुखी स्त्री का त्याग करे, तथा स्नेह रहित बांधवों को त्याग करे ॥ १६ ॥

अध्वाजरामनुष्याणांवाजिनांबंधनंज-
रा ॥ अमैथुनंजरास्त्रीणांवस्त्राणामातपो
जरा ॥ १७ ॥

दोहा—अध्वन कहँ बंधन जरा, पथ जरा नर लोग ।
वस्त्रन हित आतपजरा, तिय गन जरा अभोग ॥ १७ ॥

अर्थ—मनुष्यों का मार्गगमन बुढ़ापा है, घोड़ों का बुढ़ापा बंधन है स्त्रियों का बुढ़ापा मैथुन न करना, तथा वस्त्रों का बुढ़ापा धूप है ॥ १७ ॥

कःकालःकानिमित्राणि कोदेशः कोव्ययागमौ ॥ कस्याहंकाचमेशक्तिरिति चिंत्यं मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥

दोहा—कौन समय को मित्र को, मैं किमि वेश हमार
काम खर्च का शक्ति मम, यह गुनु बाराहिं बार ॥१८॥

अर्थ—समय कैसा है, मित्र कौन है। देश कैसा है, अपना काम खर्च कितना है, मैं किसका हूँ मेरी सामर्थ्य कितनी है, इस प्रकार बारबार विचार करे ॥ १८ ॥

अग्निर्देवोद्विजातीनांमुनीनांहृदिदैवतम् ॥ प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्रसमदर्शिनाम् ॥ १९ ॥

दोहा—द्विजगनकहँ प्रभुअनलमहँ,मुनिन हृदयमगधान
समदर्शिन हित ठाम सब, प्रतिमा हित अज्ञान॥१९॥

अर्थ—द्विजातियों (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों) के लिये अग्नि देवता है, मुनियों के लिये हृदय में देवता है, स्वल्प बुद्धियों के लिये प्रतिमा में, तथा समदर्शियों के लिये सर्वत्र ॥ १९ ॥

इति श्री चाणक्य नीतौ शिवदास पाँडेय कृत भाषा टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्याय प्रारम्भः

पतिरेवगुरु स्त्रीणांसर्वस्याभ्यागतोगुरुः
गुरुरग्निर्द्विजातीनांवर्णानांब्राह्मणोगुरुः

दोहा -गुरू अतिथि सबकर गुरू, विप्रवर्ण जग चार।
अग्नि द्विजातिन गुरु तथा, तियन गुरू भरतार ॥१॥

अर्थ स्त्रियोंका भर्ता ही गुरू है सबका गुरू अतिथि है, द्विजातियों का गुरू अग्नि है, तथा सब वर्णका गुरू ब्राह्मण है ॥ १ ॥

यथाचतुर्भि कनकपरीक्ष्यतेनिघर्षण-
च्छेदनतापताडनैः ॥तथाचतुर्भिःपुरुषः
परीक्ष्यते त्यागेनशीलेनगुणेनकर्मणा॥

(चार) छेदि तापि घिसि पीट चारि विधि कनकहिं पर खत जैस। दान शील गुण कर्म चारि विधि पुरुषहिं परखत तैसे ॥ २ ॥

अर्थ-जैसे घिसन छेदने, तपाने, तथा ताडन करने इन चार उपायों से सोना परिखाजा जाताहै, वैसे ही दान शीलता गुण तथा कर्म इन चार उपायों से पुरुष परिखाजा जाता है ॥ २ ॥

तावद्भयेषुभेतव्ययावद्भयमनागतम् ॥
आगततुभयदृष्ट्वाप्रहर्तव्यमशकया॥३॥

दोहा—जबलगभया न भय करहु, तबलग भयकी शंक
भय आगम अवलोकि कै, करहु, प्रहार निशंक ॥ ३ ॥

अर्थ—तब तक भयसे डरना चाहिये जब तक कि भय नहीं आया। आय हुए भयको देख कर निशंक होकर प्रहार करना चाहिये ॥ ३ ॥

एकोदरसमुद्भूताएकनक्षत्रजातका ॥न-
भवतिसामा शीलैयथाबदरिकण्टका४

दोहा—प्रगट उदर इक नखत इक, शील न होत स
मान जैसे काँटे बेरके, सम नहिं लखहु प्रमान ॥ ४॥

अर्थ—एकही पेटसे उत्पन्न हुए तथा एकही नक्षत्र में उत्पन्न शीलमें समान नहीं होते, जैसे बेर के काँटे ॥ ४ ॥

निस्पृहोनाधिकारीस्यान्नाकामोमण्ड-
नप्रिय ॥नाविदग्ध प्रियब्रुयात्स्पष्टव-
क्तानवञ्चक. ॥ ५ ॥

दोहा—निस्पृह अधिकारी नहिं, प्रिय अकाम श्रृंगार
सतिवादी धपकम नाहिं, प्रिय खल भाषणहार ॥ ५ ॥

अर्थ-निस्पृह अधिकारी नहीं होता, कामना रहित शृङ्गार प्रिय नहीं होता, मूर्ख प्रिय वचन नहीं कहता, तथा स्पष्ट वक्ता वैचक नहीं होता ॥ ५ ॥

मूर्खाणांपण्डिताद्वेष्याअधनानांमहाधना ॥ दुर्भगाणां च सुभगा कुलटानां कुलांगना ॥ ६ ॥

सोरठा—अघामिन अति धनवान, विधवन कहँ कुल ना
रिगण मूढन हित विद्वान,विधवन कुळ तिय द्वेष्य हैं ६

अर्थ-मूर्खों को पंडित द्वेष योग्य होते हैं, धनहीनों को महा धनी [द्वेष योग्य होते हैं ।] विधवाओं को सौभाग्यवती तथा व्यभिचारिणियों को कुल स्त्री ॥ ६ ॥

आलस्योपगताविद्यापरहस्तेगतधनं ॥ अल्पबीजंहतक्षेत्रंहतंसैन्यमनायकं ॥७॥

सोरठा—पर कर गत धन नास, सैन विना सरदार हत
आलस विद्या नास, अल्प बीजते क्षेत्र कृषि ॥ ७ ॥

अर्थ—पराये हस्त में जाने से धन, तथा आलस्य से विद्या नष्ट होती है, थोड़ बीज बोने से खेत नष्ट होता है। तथा स्वामि रहित सेना नष्ट होती है॥ ७॥

अभ्यासाद्धार्यतेविद्याकुलंशीलेनधार्यते॥गुणेनज्ञायतेत्वार्य कोपोनेत्रेणगम्यते॥ ८॥

दोहा—कुल हो धारण शीलसे, नैनन क्रोध लखात।
विद्या रहै अभ्यास सन, गुण सन श्रेष्ठ जनात॥ ८॥

अर्थ—अभ्यास से विद्या धारण की जाती है, शील से कुल धारण किया जाता है, श्रेष्ठ पुरुष गुण से जाना जाता है, तथा कोप नेत्रोंसे जाना जाता है॥ ८॥

वित्तेनरक्ष्यतेधर्मोविद्यायोगेनरक्ष्यते॥ मृदुनारक्ष्यतेभूप सत्स्त्रियारक्ष्यतेगृहं९॥

दोहा—विद्या रक्षित योगते, मृदु ते रक्षभुवाल। धन ते रक्षित धर्म अरु, गृह रक्षति शुभ बाल॥ ९॥

अर्थ–धर्म धन से रक्षित होता है, विद्या योगसे रक्षित होती है। राजा कोमलता से रक्षित होता है, तथा शुभ स्त्री से घर रक्षित होता है ॥ ९ ॥

अन्यथावेदपाण्डित्यशास्त्रमाचारमन्यथा ॥अन्यथायद्वदन्शांतलोका क्लिश्यंतिचान्यथा ॥ १० ॥

दोहा–वृथा शास्त्र आचार करि, वृथा प्रगटि श्रुति अर्थ
शात जनन कहि कटु वृथा, नर दुख पावत व्यर्थ १०

अर्थ–वेद की पंडिताई वृथा प्रकाश करने से, शास्त्र को तथा आचार को व्यर्थ करने से, तथा शांत को कटु वचन कहने वाले लोग वृथा कष्ट पाते हैं ॥ १० ॥

दारिद्र्यनाशनंदानंशीलंदुर्गतिनाशनम् ॥ अज्ञाननाशिनीप्रज्ञाभावनाभयनाशिनी ॥ ११ ॥

दोहा-दुर्गति नाशक शीलअरु, हरत दरिद्रहिं दान ।
भक्तिकरत भय नाश अरु, मति नाशक अज्ञान ११॥

अर्थ—दान दरिद्रता का नाश करता है, शील दुर्गति का नाश करता है। बुद्धि अज्ञान का नाश करती है, तथा भक्ति भयका नाश करती है॥ ११॥

नास्तिकामसमो व्याधिर्नास्तिमोहस मोरिपु ॥ नास्ति कोपसमो वान्हि र्नास्ति ज्ञानात्परसुखम् ॥ १२ ॥

दोहा—काम समान न व्याधि अरु, शत्रु न मोह समान
कोप समान न अनल अरु, सुख न ज्ञान वर आन१२

अर्थ—कामके समान व्याधि नहीं है, मोह के समान शत्रु नहीं है' कोप के समान अग्नि नहीं है, ज्ञान से अधिक सुख नहीं है॥ १२॥

जन्ममृत्युर्हियात्येको भुनक्त्येक शुभाशुभम् ॥ नरकेपुपतत्येकएकोयातिपरां गतिम् ॥ १३ ॥

दोहा—जनम मरण इकहीलहत, एक लहत पर धाम।
एकहि भोगत नरक इक भोग शुभाशुभ काम ॥१३॥

अर्थ-निश्चयही अकेला जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है, तथा अकेला ही शुभा शुभ को भोगता है, अकेलाही नरक को प्राप्त होता है, अकेलाही परम गति को प्राप्त होता है॥ १३

तृणंब्रह्मविद स्वर्गस्तृणशूरस्यजीवितम्॥ जिताक्षस्यतृणन्नारीनिस्पृहस्यतृणं जगत्॥ १४॥

दोहा-तृणसम जीवन भटन अरु, ज्ञानिन तृणसुरधाम
निस्पृह जन हित जगत तृण जितइन्द्रिन तृणवाम १४

अर्थ-ब्रह्मज्ञानीको स्वर्ग तृण के समान है, शूर को जीवन तिनका के समान है, जितेन्द्रिय को नारी तिनका के समान है, तथा निस्पृहको जगत तिनका के समान है॥ १४॥

विद्यामित्रंप्रवासेषुभार्यामित्रंगृहेषुच॥ व्याधितस्यौषधंमित्रंधर्मोमित्रंमृतस्य-च॥ १५॥

सार-विद्यामीत विदेश माँहि अरु धर्म मृतक हितकारी
मित्र औषधी रोग माँहि अरु मीत भवन महँ नारी १५

अर्थ–विद्या परदेश में मित्र है, तथा घर में स्त्री मित्र है, रोगकी औषधी मित्र है, और मृतक का धर्म मित्र है ॥ १५॥

वृथावृष्टिःसमुद्रेषुवृथातृप्तेषुभोजनम् ॥
वृथादानधनाढ्येषुवृथादीपोदिवापिच

दोहा–तृप्तन भोजन व्यर्थ अरु, सागर बरसा व्यर्थ
दिवस मध्य दीपक वृथा, धनिन दान बिनअर्थ॥१६॥

अर्थ–वर्षा समुद्र में व्यर्थ है, तृप्त को भोजन देना व्यर्थ है धनियों को दान देना व्यर्थ है, तथा दिन में दिया जलाना व्यर्थ है ॥ १६ ॥

नास्तिमेघसमतोयनास्तिचात्मसमबलम ॥ नास्तिचक्षु समतेजो नास्तिधान्यसमंप्रियम ॥ १७ ॥

दोहा–मेघ समान न वारि अरु, नहिं बल आत्म समान
चक्षु समान न तेज है, अन्न सरिस नहिं आन १७

अर्थ–मेघ की समान जल नहीं है । और आत्मबलके समान बल नहीं है । आंख के समान तेज नहीं है, और अन्न की समान प्रिय नहीं है ॥ १७ ॥

अधनाधनमिच्छंतिवाचंचैवचतुष्पदा मानवाःस्वर्गमिच्छंति मोक्षमिच्छंतिदेवताः ॥ १८

दोहा—निरधन चाहत धन तथा, नर गन चाहत स्वर्ग।
चतुष्पाद बाचा चहत, सुर चाहत अपवर्ग ॥ १८ ॥

अर्थ—निर्धनी धनकी इच्छा करते हैं, चतुष्पद वाणी की इच्छा करते हैं। मनुष्य स्वर्ग की इच्छा करते हैं, देवता मोक्ष की इच्छा करते हैं ॥ १८ ॥

सत्येनधार्यतेपृथ्वीसत्येनतपतेरवि· ॥ सत्येनवातिवायुश्चसर्वंसत्येप्रतिष्ठित१९

दोहा—धरासत्य बल है थरी, रवितप सत्यअधार।
वायु बहत बल सत्य अरु, थित सब सत्यअधार।१९।

अर्थ—सत्य से भूमि धारण की जाती है, सत्य से सूर्य तपते हैं। और सत्य से वायु बहती है, तथा सत्य से सबही स्थित हैं १९

चलालक्ष्मीश्चला· प्राणाश्चलेजीवितमंदिरे ॥ चलाचलेचससारे धर्मएकोहिनिश्चल· ॥ २० ॥

दोहा—चंचल लक्ष्मी याम अरु, चल जीवन अरु प्रान
निश्चल केवल धर्म यहि, चर अरु अचर जहान।२०।

अर्थ—लक्ष्मी चंचल है, प्राण भी चल है। जीवन तथा घर चंचल हैं॥ और चराचर इस संसार में एक धर्म ही निश्चय है॥२०॥

नराणांनापितोधूर्त्तः पक्षिणांचैववायसः॥
चतुष्पदांशृगालस्तुस्त्रीणांधूर्त्ताचमालिनी॥२१॥

दोहा—शठ चौपदम शृगाल अरु, नाई नर बिच नीच
काग धूर्त पक्षिन अधम, मालिनी तिय गन बीच॥२१॥

अर्थ—मनुष्यों में नाई धूर्त है, तथा पक्षियों मे कौआ, तथा चौपायों में श्रगाल, और नारियों मैं मालिनी॥२१॥

जनिताचोपनेताच यस्तुविद्याप्रयच्छति॥ अन्नदाताभयत्राता पञ्चैतेपितरस्मृता॥२२॥

(छंद) प्रगट कर्ता उपनयनादिक, निज पितु भय रक्षा पार। कह आत यह पाँच पिता हैं, जो विद्या दातार ॥ २२ ॥

अर्थ—उत्पन्न करने वाला, और उपनयनादि संस्कार करने वाला, तथा जो विद्या देता है। अन्नदाता तथा कष्ट से बचा नेवाला यह पांचों पिता कहे गये हैं ॥ २२ ॥

राजपत्नीगुरो पत्नीमित्रपत्नीतथैवच ॥ पत्नीमातास्वमाताचपञ्चैतामातरः स्मृता ॥ २३ ॥

दोहा—पाँच कही हैं मातु यह, मित्र नारि गुरु बाल तिय माता निज मातु अरु इहि विधि तिय नरपाल॥२३॥

अर्थ—राजा की स्त्री गुरू की स्त्री इसी प्रकार मित्र की स्त्री सास तथा अपनी माता यह पाँच माता कही गई हैं॥२३॥

इतिश्री चाणक्यनीतौ शिवदास पाँडेय कृत भाषा टीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठमोऽध्याय प्रारंभ ॥ ६ ॥

श्रुत्वाधर्मं विजानाति श्रुत्वात्यजति दुर्मतिम् ॥ श्रुत्वाज्ञान मवाप्नोति श्रुत्वामोक्ष मवाप्नुयात् ॥ १ ॥

दोहा—सुनिकै जानत धर्म अरु, सुनि कै पावत ज्ञान
सुनि ही के त्यागत कुमति, सुनिपावत निर्वान ॥ १ ॥

अर्थ—शास्त्रादि के सुनकरही धर्म को जानता है, सुनकर ही दुर्मति को त्यागता है । सुनकर ही ज्ञानको पाता है, सुन करही मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

काक पक्षिषु चांडाल. पशूनां चैव कुक्कर.
पापोमुनीनांचांडाल सर्वेषांचैवनिंदक.

दोहा—काग पक्षिगन माँहि शठ, श्वान पशुन गन बीच
मुनिगन महँ पापी अधम, सब महँ निंदक नीच ॥२॥

अर्थ—पशुओं में कुक्कर तथा पक्षियों में कौआ चांडाल है। मुनियों में पापी तथा सब में चांडाल निंदक है ॥ २ ॥

भस्मनाशुद्ध्यते कांस्यताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ॥ रजसा शुद्ध्यते नारीनदी वेगेन शुद्ध्यति ॥ ॥ ३ ॥

सोरठा—तिय हो रज ते शुद्ध, काँस शुद्ध हो भस्म ते।
सरित बेगसन शुद्ध, ताम्र खटाई कहि विमल ॥ ३ ॥

अर्थ—कांसा भस्म से शुद्ध होता है; तांबा खटाई से शुद्ध होता है। स्त्री रजस्वला होने पर शुद्ध होती है। तथा नदी वेग से शुद्ध होती है ॥ ३ ॥

भ्रमन् सम्पूज्यते राजा भ्रमन्सम्पूज्यते द्विज ॥ भ्रमन् सम्पूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति ॥ ४ ॥

दोहा—द्विज पूजित हो भ्रमण ते, पूज्य भ्रमण नर पाल ।
योगी पूजित भ्रमण ते, नष्ट भ्रमण ते बाल ॥ ४ ॥

अर्थ—विचरने वाला राजा पूजित होता है, भ्रमण शील ब्राह्मण पूजित होता है। भ्रमण शील योगी पूजित होता है, [परन्तु] भ्रमण शील नारी नष्ट होती है ॥ ४ ॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणियस्यार्थास्तस्य बान्धवा ॥ यस्यार्था· सपुमाँल्लोके यस्यार्थ सच पंडित· ॥ ५ ॥

दोहा—जिहिके धन तिहि मित्र अरु जिहि धन सोइ महान ।
बाँधव ताके जासु धन, जिहि धन सो विद्वान ॥ ५ ॥

अर्थ–जिनके धन है; तिसके मित्र हैं, जिसके धन है उसके बंधु है, जिसके धन है वही लोक में श्रेष्ठ पुरुष है जिसके धन है, वही पंडित, है ॥ ५ ॥

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोपि तादृशः ॥ सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥ ६ ॥

दोहा–तैसहि हो उद्योग अरु, तैसहि बुद्धि उदोत । होत सहायक ताहि विधि, भावी जिहि विधि होत॥६॥

अर्थ–जैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है, वैसाही उद्योग तथा वैसे ही सहायक हो जाते हैं । जैसी भवितव्यता होती है ॥ ६ ॥

काल पचति भूतानि काल संहरते प्रजा काल सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रम ॥७॥

दोहा–प्रजन नशावत काल अरु, भक्षत प्राणिन काल जागत काल सुसुप्ति महँ, निश्चय दुस्तर काल॥ ७ ॥

अर्थ—कालही प्राणियों को खाता है। कालही प्रजाओं का संहार करता है, सोते में कालही जागता है, निश्चयही काल दुरंघन के अयोग्य है ॥ ७ ॥

न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति ॥ मदोन्मत्ता न पश्यति अर्थी दोष न पश्यति ॥ ८ ॥

दोहा—मद मतवार न लखत अरु,लखत नाहिं कामान्ध अर्थी दोष न लखत,नहीं लखत नहीं जन्मान्ध ॥८॥

अर्थ—जन्म का अंधा नहीं देखता, कामांध नहीं देखता, तथा मदसे मतवाला नहीं देखता, और अर्थी दोष को नहीं देखता ॥ ८ ॥

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वय तत्फलम श्नुते ॥ स्वय भ्रमति संसारे स्वय तस्माद्विमुच्यते ॥ ९ ॥

दोहा—करत आपही आत्म कृत, भोगत तिहि फल आप आप भ्रमत संसार महँ, मुक्त होत जग आप ॥ ९ ॥

अर्थ—आत्मा आपही कर्म करता है, आपही उसका फल भोगता है। आपही संसार में भ्रमण करता है, तथा आप ही उससे (संसार से) मुक्त होता है ॥ ९ ॥

राजा राष्ट्रकृत पापं राज्ञः पापं पुरोहितः ॥ भर्त्ता च स्त्रीकृत पापं शिष्य पापं गुरुस्तथा ॥ १० ॥

दोहा—उपरोहित नृप पापलह, प्रजा पाप भूपाल। शिष्य पाप पावत गुरु पुरुष पाप लह बाल ॥ १० ॥

अर्थ—प्रजाके किये पाप को राजा, राजा के पाप को पुरोहित तथा स्त्री के किये पाप को पति, और शिष्य के किये पाप को गुरु भोगता है ॥ १० ॥

ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्याभिचारिणी ॥ भार्या रूपवती शत्रुःपुत्र शत्रुरपण्डितः ॥ ११ ॥

दोहा—ऋणकर्ता पितु शत्रु अरु रिपु माताव्य भिचारि। पुत्र अपंडित शत्रु है, रूपवती अरि नारि ॥ ११ ॥

अर्थ–ऋण करने वाला पिता शत्रु है; और व्यभिचारिणी माता शत्रु है। रूपवती स्त्री शत्रु है, तथा मूर्ख पुत्र शत्रु है॥ ११॥

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् स्तब्ध मञ्जलि कर्मणा॥ मूर्खं छंदानुवृत्त्या च यथार्थत्वेन पण्डितम्॥ १२॥

दोहा–लोभिहि धन ते वश करहि, सविनय सह अभिमान। शठहि तासु अनुसार चलि सत्यहिते विद्वान॥ १२॥

अर्थ–लोभी को धन से वश करे, अभिमानी को हाथ जोड़कर मूर्ख को उसके अनुसार चलने से, तथा पंडित को सत्यता से (वश करे)॥ १२॥

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम्॥ वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो वरं न दारा नकुदारदारा॥ १३॥

छंद–मीत न वर न कुमित्र मित्र वर नृप नहिं वर नहिं कुनृपसुखाल शिष्य नहिं वर शिष्य कु शिष्यन, नारि न भल नहिं बाल कुबाल ॥ १३ ॥

अर्थ–राज्य का न होना अच्छा है; पर दुष्ट राजा का राज भला नहीं, मित्र न होना अच्छा है पर कुमित्र का मित्र होना भला नहीं ॥ शिष्य बिना अच्छा है पर कुशिष्य का शिष्य होना भला नहीं, स्त्री नहोना अच्छा है पर खराब स्त्री का स्त्री होना अच्छा नहीं ॥ १३ ॥

कुराजराज्येन कुतःप्रजासुखं कुमित्रमित्रेण कुतोहि निर्वृति ॥ कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिःकुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ॥ १४ ॥

छंद राज कुराज प्रजान कहा सुख शाँति कहा शठ मित्रहिं पाय । नारि कुनारि पाय गृह रति कह यश होत कुशिष्य पढाय ॥ १४ ॥

अर्थ–दुष्ट राजाके राज्य में प्रजाओं को सुख कहाँ ? कुमित्र के मित्र होने से सुख कहाँ ? और कुस्त्री क स्त्री होनेसे घरमें प्रीति कहाँ ? तथा कुशिष्यके पढाने मे यश कैसे हो सकता है ॥ १४ ॥

सिंहादेकं बकादेक शिक्षेच्चत्वारिकुक्कु टात ॥ वायसात्पच शिक्षिच्च षट् शुन स्त्रीणिगर्दभात ॥ १५ ॥

(सार)सीखहि गर्दभ गुण त्रय बक इक,कुक्कुट सम गुणचारी । इक केहरि षट श्वान काग सम सीखहि मुख्य कामारी ॥ १५ ॥

अर्थ–सिंह से एक, बगले से एक, तथा मुर्गा से चार गुण सीखने चाहिये, कुत्ता से छह गुण, तथा कौए से पांच गुण और गर्दभ से तीन गुण सीखना चाहिये ॥ १५ ॥

प्रभूतं कार्यमल्पं वा यन्नर कर्तुमिच्छ- ति ॥ सर्वारंभेण तत्कार्य सिंहादेकं प्रच क्षते ॥ १६ ॥

(सार)लघुता कार्य महान करम नर, इच्छा धारहि जोई ॥ सबप्रकार करिबो यह गुण इक,सिखहि सिंह सम सोई ॥ १६ ॥

अर्थ-बडे या छोटे कार्य को जो मनुष्य करने की इच्छा करता है, सब प्रकार के प्रयत्न से उसको करना यह एक सिंह सेसीखना ॥ १६ ॥

इंद्रियाणि च संम्यय बकवत्पंण्डितो नर ॥देशकालंवलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत ॥ १७ ॥

दोहा—सबको इंद्रिन—वश्यकरि, देश कालबल जान। सकल काज पूरण करहि, पंडित नर मतिमान ॥१७॥

अर्थ-पंडित मनुष्य इंद्रियों को बगले की समान रोककर, देश काल तथा बल जानकर सब कार्यों को सिद्ध करे ॥१७॥

प्रत्युत्थान च युद्धं च सविभाग च वन्धुषु ॥ स्वयमाक्रम्य भोग च शिक्षेश्चत्वारि कुक्कुटात ॥१८॥

(सार)जगब समय पर बधु भाग सम, देय सजगता धारि करि आक्रमण स्वतः भोगब ग्रुन, सीखहि कुक्कुटचारी ॥ १८ ॥

दोहा—बीस गुणन इन आचरत, मनुज यथाविधि जौन सकल कार्य महँ होत है,अजय भविष्यत तौन२१

अर्थ—जो मनुष्य इन बीस गुणों को आचरण करेगा, वह भविष्यत में अजेय होगा ॥ २२ ॥

इति श्री चाणक्य नीतौ शिवदास पाँडेय कृत भाषा टीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थनाश मनस्तापं गृहिणीचरितानि च ॥ नीचवाक्य चापमानं मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ १ ॥

दोहा—नारि चरित धन नाश अरु,नीच वचन अपमान मन को ताप प्रकाश जनि, करहि पुरुष मतिमान॥ १॥

अर्थ—धनका नाश, मन का ताप, स्त्री के चरित्र और नीच पुरुषों के वचन, और अपमान को बुद्धिमान न प्रकाशित करें ॥ १ ॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च ॥ आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥ २ ॥

दोहा–होत सुखी विद्या ग्रहण, अरु अहार व्यवहार ।
लेन देन धन धान्य महँ, लज्जा त्यागनहार ॥ २ ॥

अर्थ–धन धान्य के प्रयोग में, विद्याके ग्रहण करने में, और आहार में, तथा व्यवहार में लाज त्यागने वाला सुखी होता है ॥ २ ॥

सतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शांतिरेव च ॥ न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥ ३ ॥

दोहा–वसन सतोषामृत परम होत शांति सुख जौन
भ्रमण हार इत उत कहत, धन लोलुप नहिं तौन ३॥

अर्थ–संतोष रूपी अमृत से तृप्त हुओं को, जो सुख तथ शान्ति है । यह इधर उधर दौड़ने वाले धनके लोभियोंको नहीं होता ॥ ३ ॥

संतोषस्त्रिषु कर्तव्य स्वदारे भोजने धने॥
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदा-
नयो ॥ ४ ॥

दोहा—तोष करहु इन तीन धन भोजन निज तिय माँहि
दान पठन जप इन, त्रय महँ कीजिये नाँहि ॥ ४ ॥

अर्थ—अपनी स्त्री में, भोजन में, धन में, इन तीन में संतोष करना चाहिये, पढने में जप और दान इन तीन में न करना चाहिये ॥ ४ ॥

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दंपत्यो स्वामिभृ-
त्ययो ॥ अन्तरेण न गंतव्यं हरस्य वृ-
षभस्य च ॥ ५ ॥

दोहा—दुइ ब्राह्मण द्विज अनल तिय, अरु हल बिच शासिमाल। चहिय जान नहिं भृत्य प्रभु, मध्य मध्य पति बाल ॥ ५ ॥

अर्थ—दो ब्राह्मणोंके, ब्राह्मण तथा अग्नि के स्त्री तथा पुरु

से स्वामि तथा सेवक के; शंकर के तथा वृष के बीच में न जाना चाहिये ॥ ५ ॥

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च ॥ नैव गां न कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा ॥ ६ ॥

दोहा—चरणन ते परसै नहिं, अनल वृद्ध द्विजराय। नहिं कुमारि नहिं शिशु तथा, नहि गुरु अरु नहिं गाय ॥ ६ ॥

अर्थ—अग्नि को, गुरु को, तथा ब्राह्मण को चरणों से स्पर्श न करे। तथा न गाय को, न कुमारी को, न वृद्ध को, न शिशु को ॥ ६ ॥

शकटं पञ्चहस्तेन दशहस्तेन वाजिनम्। हस्तिनं तु सहस्रेण देशत्यागेन दुर्जनम् ॥ ७ ॥

दोहा—पाँच हाथ ते सकट अरु, हाथिहिं हाथ हजार। तजै अश्व दश हाथ ते अरु तजि देश गँवार ॥ ७ ॥

अर्थ–पाँच हाथसे गाड़ीको दश हाथ से घोड़े को, हजार हाथसे हाथीको, तथा दुर्जन को देश त्याग करके त्यागना चाहिये ॥ ७ ॥

हस्ती ह्यंकुशमात्रेण वाजी हस्तेन ताड्यते ॥ श्रृंगी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः ॥ ८ ॥

छंद–गज अंकुश ते वाजि हस्त ते, निश्चय वश मे आई। श्रृंगी लकुट हस्त गह, असिकर, दंडित कीनो भाई ॥ ८ ॥

अर्थ–निश्चयही हाथी अंकुशमात्र से, घोड़ा हाथ से, सींगवाले लकुटधारी हाथसे, तथा दुर्जन खड्ग धारी हाथ से दंडित किया जाता है ॥ ८ ॥

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनगर्जिते ॥ साधवः परसम्पत्तौ खलाः परविपत्तिषु ॥ ९ ॥

दोहा–धन गर्जन सुनि मोर अरु पर धन निरखि सुजान । तुष्ट होत द्विज असन लहि, पर दुख दुष्ट अजान ॥ ९ ॥

अर्थ-ब्राह्मण भोजनसे, तथा मोर बादल गरजनेसे, साधु जन परसंपत्ति देखकर, तथा दुष्ट दूसरेकी विपत्ति देखकर संतुष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्बलम्। आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेन वा ॥ १० ॥

दोहा—बल हीनन प्रतिकूलता, अनुकूलता महान ।
बल ते अथवा विनय ते, वश अरि करहि समान॥१०॥

अर्थ-अनुकूलतासे बलीको, प्रतिकूलतासे दुर्बलको, अपनी बराबरवाले शत्रुको, विनय या बलसे वश करै ॥ १० ॥

बाहुवीर्यबलं राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मविद्बली। रूपयौवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम्

दोहा—ब्रह्मविज्ञ द्विजवर बली, बाहु वीर्य बलभूप ।
बल अति उत्तम मधुरता, यौवन तियगन रूप ॥ ११

५

अर्थ—सुभाओंका पराक्रम राजाका बल है, ब्राह्मणका बल वेदपाठ ब्राह्मणबली होता है। रूप, यौवन तथा मधुरता स्त्रियोंको परमोत्तम बल है ॥ ११ ॥

नात्यन्त सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ॥ छिद्यंते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठंति पादपा ॥ १२ ॥

दोहा—होन न चाहिये अति सरल, परिवेखहु बनठाम। सरल वृक्ष कटिजात तित, बने रहत तरुवाम ॥ १२ ॥

अर्थ—अत्यंत सीधे नहीं होना चाहिये वनस्थलीको जाकर देखो तहाँ सीधे वृक्ष कट जाते हैं, टेढे वृक्ष स्थिर रहते हैं ॥ १२ ॥

यत्रोदकं तत्र वसंति हंसास्तथैव शुष्कं परिवर्जयंति ॥ न हंससतुल्येन नरेण भाव्य पुनस्त्यजत पुनराश्रयन्त ॥ १३ ॥

(छंद) जित जल बसत हंस तित हरि विधि, सूखसरैं तजि देत। हंस समान न होन चहिये नर, तजि पुनि आश्रय केत ॥ १३ ॥

अर्थ-जहाँ जल है, तहाँ हंस निवास करते हैं, इसी भाँति सूखजानेपर त्याग देते हैं। हंसकी समान मनुष्यको न होना चाहिये; फिर त्याग देते हैं, फिर आश्रय लेते हैं ॥ १३ ॥

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् ॥ तडागोदरसंस्थानां परिस्रव इवांभसाम् ॥ १४ ॥

दोहा—सम्पादित धनको अहहिं, रक्षण केवल दान।
उदर सरोवर जल सुफल, जिमिबाहर थल जान ॥१४॥

अर्थ-सम्पादन (एकत्र) किये धनका त्याग करनाही रक्षा है। जैसे सरोवरके मध्य स्थित जलका बाहर सेत्रादिमें निकलना सफल है ॥ १४ ॥

यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बांधवा ॥ यस्यार्थ स पुमाँल्लोके यस्यार्थ स च जीवति ॥ १५ ॥

सार—जिहिके धन जग मीत तासुके,जिहिधन बांधव ताके जीवित सोधन अहहि जासु अरु नर जग वह धन जाके ॥ १५ ॥

अर्थ–जिसके धन है, उसके मित्र हैं। जिसके धन है, उस के बंधु हैं, जिसके धन है, वह जगतमें पुरुष है। जिसके धन है, वहीजीता है॥ १५॥

स्वर्गस्थितानामिहजीवलोके चत्वारि चिन्हानि वसति देहे॥ दानप्रसंगो मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणंच

(छंद) इहिजग माँहें आये स्वर्गिन तन, चिन्ह होत हैं चार। द्विजन तृप्ति सुर सेवदान अरु, कोमल वचन उदार॥ १६॥

अर्थ–स्वर्गमें निवास करनेवालोंके इस जीवलोकमें आनेपर शरीरमें चार चिन्ह होते हैं, दानका प्रसंग, मधुर वाणी, तथा देवताओंकी पूजा और ब्राह्मणोंकी तृप्ति करना॥ १६॥

अत्यन्तकोप कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वजनेषु वैरं॥ नीचप्रसंगः कुलहीन सेवा चिन्हानिदेहे नरकस्थितानाम् १७

(छंद) स्वजन द्रोह कटुवचन कोप अति, दरिद्रता अम नीच सनेह। सेवा करिबो हीन मंशकी, चिन्ह बसत यह नर किन देह॥ १७॥

अर्थ-अत्यंत कोप तथा कटुवाणी, निर्धनता, तथा अपने कुटुम्बियोंसे वैर, नीचकी संगति तथा कुलहीनकी सेवा यह चिन्ह नरकमें रहनेवालोंके हैं ॥ १७ ॥

गम्यते यदि मृगेन्द्रमंदिरंलभ्यतेकरिकपोलमौक्तिकम् ॥ जम्बुकालयगते च प्राप्यते वत्सपुच्छखरचर्मखण्डनम् ॥१८॥

(छंद) मोती मिलत कपोल गजन जो के हरि मंदिर आवै जम्बुक गृह खर चर्म भाग अरु पूँछ वत्सकी पावै ॥ १८ ॥

अर्थ-जो सिंहके मंदिरमें जाय, तो हाथीके गण्डस्थलके मोती मिलते हैं। और सियारके स्थानमें जानेसे बछडेकी पूँछ तथा गधेके चर्मका टुकडा मिलता है ॥ १८ ॥

शुन:पुच्छमिवव्यर्थं जीवितं विद्यया विना ॥ न गुह्यगोपने शक्त न च दंशनिवारणे ॥ १९ ॥

दोहा-विद्या बिन जीवन अपहि, श्वान पूँछ सम व्यर्थ । गुह्य शरीर न ढँकि सकत, दंश हनन न समर्थ ॥१९॥

अर्थ-विद्याके बिना कुत्तेकी पूँछके समान जीवन व्यर्थ है

भोन प्रस भंग दकमेमें, नहीं निवारण करनेमें समर्थ है ॥१९॥

वाचां शौचं च मनसः शौचमिन्द्रिय निग्रहः ॥ सर्वभूतदया शौचमेतच्छौचं परार्थिनाम् ॥ २० ॥

(छंद) परमार्थिन कर शौच भहीं यह, दया करन सब मानी । शौच हृदय अरु इन्द्रिय गमदम, तथा शौचपन वानी ॥ २० ॥

अर्थ–यह परमार्थियोंका शौच है । वाणीका शौच मनका शौच इंद्रियोंका जय, तथा सब प्राणियोंपर दया ॥ २० ॥

पुष्पे गंधं तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम् ॥ इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकतः ॥ २१ ॥

(छंद) पुष्प गंध तिल तेल दुग्ध घृत, इक्षु रहत रस जैसे । अनल काठ सम तनमहँ आतम, लखहु ज्ञानते तैसे ॥ २१ ॥

अर्थ–जैसे पुष्पमें गंध, तिलमें तेल काठमें अग्नि, दूधमें घृत, तथा ईखमें गुड रहता है । वैसे ज्ञान से देहमें आत्माको देखो ॥ २१ ॥

इति श्री चाणक्य नीतौ शिवदास पांडेय कृत भाषा टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

। अथाष्टमोऽध्यायः ।

अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः ॥ उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥ १ ॥

दोहा–चाहत हैं धन अधम नर, मध्यम नर धन मान।
उत्तम चाहत मान अरु, धनहीं मान महान ॥ १ ॥

अर्थ–अधम पुरुष धनकी इच्छा करते हैं। तथा मध्यम धनकी तथा मानकी इच्छा करते हैं। उत्तम पुरुष मानकी इच्छा करते हैं। क्योंकि मान बडे पुरुषोंका धन है ॥ १ ॥

इक्षूनपः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम्॥ भक्षयित्वापि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ २ ॥

दोहा–ऊख मूल फल दूध जल, तथा औषधी पान।
इनके भोजन कियहु पर, उचित दान अस्नान ॥ २॥

ऊख, जल, दूध, मूल, पान, तथा फल, औषधि, खाकर भी स्नानदानादिक क्रिया करना चाहिये ॥ २ ॥

दीपो भक्षयते ध्वांत कज्जल च प्रसूयते यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा ॥ ३ ॥

दोहा—तम कहँ भक्षत दीप अरु, प्रगटत कज्जल आहि
प्रजा होति तिमिही प्रगट, अन्न नित्य जिमि खाहि॥३॥

अर्थ—दीपक अंधकारको खाता है तथा काजलको प्रगट करता है, जैसा नित्य अन्न खाया जाता है वैसी प्रजा उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥

वित्तं देहि गुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्र देहि क्वचित प्राप्तं वारिनिधेर्जलं घनमुखे माधुर्ययुक्त सदा जीवन्र स्थावरंजगमांश्च सकलान् संजीव्य भूमंडलं भूय· पश्यति देव कोटिगुणित गच्छत्तमम्भोनिधिम ॥ ४ ॥

[कवित्त] दीजै धन गुनिन अनत न रुचित दीजै,
वारि निधि वारि घन मुख में समाय कै।
कहत मधुरता निरंतर ही वारि वही,
सकल चराचर प्रजान को जिवाय कै॥
सकल जियावत महान भूमि मंडल को,
ताते पुनि कोटि गुन और जल छाय कै।
एहो मति विज्ञ देव पुनि इमि देख्यो जात,
मिलत महान वारि निधि माँहिं जाय कै॥४॥

अर्थ–हे बुद्धिमान। गुणियोंको धन दो, अन्यत्र न दव, समुद्रका जल मघके मुखमें प्राप्त होनेसे निरन्तर मधुरता युक्त होता है। और वही जल सम्पूर्ण चराचर जीवोंको जिवाकर, भूमंडलको जिवाता हुआ हे देव। फिर कोटि गुणा होकर सम सागरमें जाता है ऐसा देखा है॥४॥

चांडालानां सहस्रैश्च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभि॥ एको हि यवन प्रोक्तो न नीचो यवनात्पर॥५॥

दोहा—अधिक सहस चाँडाल ते, अधमी यवन महान ।
तत्व विदन भाख्यो कविन, नीच न यवन समान ॥५॥

अर्थ—तत्वदर्शी कवियोंने सहस्र चाँडालोंसे नीच एक यवन कहा है, यवनसे नीच दूसरा नहीं है ॥ ५ ॥

तैलाभ्यंगे चिताधूमे मैथुनेक्षौरकर्मणि तावद्भवति चांडालो यावत्स्नानं न चाचरेत् ॥ ६ ॥

(छंद) तेल लगाये चिताधूम ते, क्षौर दिये रतिदान । तब लग रह चाँडाल नरत नहिं, जबलौं मनुज स्नान ॥ ६ ॥

अर्थ—तेल मलनेसे चिताकी धूम लगनेसे मैथुन करनेसे और क्षौर करानेसे तबतक मनुष्य चाँडाल रहता है, जबतक स्नान न करे ॥ ६ ॥

अजीर्णे भेषज वारि जीर्णे वारि बलप्रदम् भोजने चामृत वारि भोजनांते विषप्रदम् ॥ ७ ॥

सार—औषधि वारि अजीर्ण माँहिं अरु, असन अंत विषकारी भोजन समय अमिय है जल है, पचन समय बलकारी ॥ ७ ॥

अर्थ—अजीर्णमें जल औषधि है, पचनेके समय जल बलदायक है । भोजनके समय जल अमृत है, तथा भोजनके पश्चात् भोजन विषके समान गुण करता है ॥ ७ ॥

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो नरः ॥ हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः ॥ ८ ॥

(छद) नारीगन बिन पति विनष्ट हैं, मनुज नष्ट अज्ञान । नष्ट ज्ञान है क्रियाहीन अरु, दलदल बिना प्रधान ॥ ८ ॥

अर्थ—क्रियाहीन ज्ञान नष्ट है, और अज्ञानसे मनुष्य नष्ट है । बिना सेनापतिकी सेना नष्ट है, तथा पति विहीन स्त्रियों नष्ट हो जाती हैं ॥ ८ ॥

वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्तगतं धनम् ॥ भोजनं च पराधीनं तिस्रः पुंसां विडम्बनाः ॥ ९ ॥

दोहा—बंधु हरत धन गत तथा, वृद्धकाल हत नारि।
पराधीन भोजन अहहिं, पुरुषहिं त्रय दुखकारि ॥९॥

अर्थ—वृद्धकालमें मरी हुई स्त्री, बंधुओंके हाथमें गया हुआ धन, तथा पराधीन भोजन, पुरुषको तीनों विडम्बना हैं ॥ ९ ॥

अग्निहोत्रं विना वेदा न च दानं विना क्रिया ॥ न भावेन विना सिद्धिस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥ १० ॥

दोहा—अग्नि होत्र बिन वेद अरु, नष्ट क्रिया बिनदान।
भाव बिना नहिं सिद्धि कछु, ताते भाव प्रधान ॥१०॥

अर्थ—अग्निहोत्रके बिना वेद, और न क्रियाके बिना दान, तथा भावके बिना सिद्धि नहीं है, इस कारण भावही कारण है ॥ १० ॥

काष्ठपाषाणधातूनां कृत्वा भावेन सेवनम् ॥ श्रद्धया च तथा सिद्धिस्तस्य विष्णोः प्रसादतः ॥ ११ ॥

दोहा—सेव करन महँ मुर्त्तिरचि,धातु काठ पाखान।
श्रद्धाते तिमि सिद्धिलह, कृपा विष्णु भगवान ॥ ११ ॥

अर्थ—काष्ठ पाषाण धातुओंकी मूर्तिको बनाकर भावसे सेवा करनेमें भी मद्धासे वैसी सिद्धी विष्णुके प्रसादसे होती है॥११॥

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये ॥ भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावोहि कारणम् ॥ १२ ॥

दोहा—काठ माँहिं नहिं देव अरु,नाहिं कचन न पखान
ताते कारण भावही, भाव माँहिं भगवान ॥ १२ ॥

अर्थ—न ईश्वर काष्ठमें है, न पाषाणमें, न सुवर्णमें, निश्चयही देवता भावमें विद्यमान है, इसीसे भावही कारण है ॥ १२ ॥

शांतितुल्य तपो नास्ति न संतोषात्परं सुखम् ॥ न तृष्णाया परो व्याधिर्न च धर्मो दयासमः ॥ १३ ॥

दोहा—अधिक न सुख संतोष ते,सुख नहिं शांतिसमान
तृष्णाते नहिं व्याधी अति,धर्म न दया समान ॥१३॥

अर्थ—शांतिके समान तप नहीं है, संतोषसे अधिक सुख नहीं है। तृष्णासे अधिक व्याधि नहीं है। और दयाके समान धर्म नहीं ॥ १३ ॥

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी ॥ विद्या कामदुधा धेनुः संतोषो नन्दनं वनम् ॥ १४ ॥

(छंद) क्रोधहि है यमराज तथा सरि, वैतरनी तृष्णाही। नंदन वन संतोष अहहि अरु, कामधेनु विद्याही॥ १४॥

अर्थ—क्रोधही यमराज है, तृष्णाही वैतरनी नदी है। विद्याही कामधेनु गौ है, संतोषही नंदन वन है ॥ १४ ॥

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम् सिद्धिर्भूषयते विद्या भोगो भूषयते धनम् ॥ १५ ॥

(छंद) गुणरूप भूषित करत, सिद्धिहि पाय विद्या शोभ। कुल करत भूषित शील, अरुधन भोगते छद शोभ ॥ १५ ॥

अर्थ—गुणरूपको भूषित करता है, शील कुलको भूषित करता है। सिद्धि विद्याको भूषित करती है, भोग धनको भूषित करता है ॥ १५ ॥

निर्गुणस्य हतं रूपं दुःशीलस्य हतं कुलम्॥ असिद्धस्यहता विद्या अभोगेन हतंधनम्॥ १६॥

दोहा–निर्गुण कर है रूपहत, हत कुशील परिवार। विद्या नष्ट असिद्धकी बिना भोग धन छार॥ १६॥

अर्थ–निर्गुणका रूप हत है, दुःशीलका कुल हत है, सिद्धि रहित की विद्या हत है, बिना भोगके धन हत है। १६॥

शुद्धं भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता॥ शुचिः क्षेमकरो राजा संतुष्टो ब्राह्मणः शुचिः॥१७॥

दोहा–धरा प्राप्त जल शुचि तथा, शुचि पतिव्रत रत बाल। शुद्ध विप्र संतोष धर, शुचि क्षेमी नरपाल।१७॥

अर्थ–भूमिमें प्राप्त जल शुद्ध है, पतिव्रता स्त्री शुद्ध है। कल्याण कर्ता राजा शुद्ध है, संतोषी ब्राह्मण पवित्र है॥१७॥

असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च मही-

भृत॰ ॥ सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जश्च कुलांगनाः ॥ १८ ॥

दोहा—असंतोषधर नष्ट द्विज, संतोषी नरपाल ।
गणिका नष्ट सलज्ज अरु, गत लज्जा कुल बाल १८॥

अर्थ—संतोषहीन ब्राह्मण नष्ट है, तथा संतोषी राजा नष्ट है, निर्लज्ज कुलस्त्री, तथा लज्जावान गणिका नष्ट है ॥ १८ ॥

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम् ॥ दुष्कुलं चापि विदुषो देवैरपि सुपूज्यते ॥ १९ ॥

दोहा—देहिन विद्या हीन के, का कुल भये महान ।
पूजा पावन सुरत सन, नीच वंश विद्वान ॥ १९ ॥

अर्थ—देहधारियोंके विद्यासे हीन बडे कुलसे क्या है विद्वानका दुष्कुलभी देवताओंसे पूजा जाता है ॥ १९ ॥

विद्वान प्रशस्यते लोके विद्वान सर्वत्र गौरवम् ॥ विद्यया लभते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते ॥ २० ॥

दोहा–विद्या पूजित ठाम सब, कहु सुध सब जग मान ।
विद्या ते सब मिलत है, पंडित पूज्य जहान ॥ २० ॥

अर्थ–संसारमें पंडित पूजित होता है, पंडित सर्वत्र गौरव पाता है, विद्यासे सब प्राप्त होता है, विद्या सब स्थानोंमें पूजी जाती है ॥ २० ॥

रूपयौवनसंपन्ना विशालकुलसंभवाः ॥
विद्याहीना न शोभंते निर्गंधा इव किंशुकाः ॥ २१ ॥

(छंद) विद्या बिन यौवन छवि युतनर, उपमें बंश महान ।
शोभा पावत नाहिं गंध बिन, टेसू पुष्प समान ॥ २२ ॥

अर्थ–रूप यौवनसे युक्त, बडे कुलमें उत्पन्न हुए विद्यासे हीन पुरुष, गंधि रहित टेसूके फूलके समान शोभा नहीं पाते ॥ २१ ॥

मांसभक्षैः सुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः ॥
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रांतास्ति मेदिनी ॥ २२ ॥

(छंद) सुरापान कारी असर अरि, शठपक्ष मत्स्य हार।
पुरुषा कार पद्मन से नसुषा, है मति संयुत भार ॥ २२ ॥

अर्थ—मांस खानेवाले, सुरापान करनेवाले असर से हीन मूर्ख पुरुषाकार पशुओंसे पृथिवी भारसे आक्रान्त है ॥ २२ ॥

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मंत्रहीनश्च ऋत्विजः ॥ यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥ २३ ॥

दोहा—अन्नहीन राज्यहिं दहत दान हीन यजमान।
मंत्रहीन ऋत्विजन कहँ, रिपु न यज्ञ सम आन॥२३॥

अर्थ—अन्नहीन राज्यको, तथा मंत्रहीन ऋत्विजको दानहीन यजमानको नष्ट करता है। यज्ञके समान और शत्रु नहीं है ॥ २३ ॥

इति चाणक्यनीतौ भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

। अथ नवमोऽध्यायः ।

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्यज॥ क्षमार्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत्पिब ॥ १ ॥

(छंद) तात चहत जो मुक्ति त्यागु तो, विषय गरल सम मान । आर्जव दया क्षमा सत शौचहिं, पी तू सुधा समान ॥ १ ॥

अर्थ—हे तात, जो मुक्ति की इच्छा करता है, तो विषयों को विषके समान त्याग दे, तथा क्षमा, आर्जव, दया, शौच तथा सत्य को अमृत के समान पी ॥ १ ॥

परस्परस्य मर्माणि ये भाषंते नराधमा त एव विलयं यांति वल्मीकोदरसर्पवत ॥ २ ॥

दोहा—कहत परस्पर कटु वचन, नरन नराधम जौन वल्मी कोदर सर्प सम, नाशहिं पावत तौन ॥ २ ॥

अर्थ—जो मनुष्योंमें अधम परस्परमें मर्म वचनोंका बोलते हैं, वे बाँमीमें पडे सर्पके समान नाशको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

गंधः सुवर्णेफलमिक्षुदंडे नाकारि पुष्पं खलु चंदनस्य ॥ विद्वान् धनी भूपतिदीर्घजीवी धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥ ३ ॥

(छंद) चंदन पुष्प दीर्घवय-भूपति इक्षु दंड फल सुवर्ण धनवान । चतुर न गंधनकी न प्रथम नहिं, भयो विधिहिं मंत्र कोस भान ॥ ३ ॥

अर्थ–सोनेमें सुगंध, ऊखमें फल, चंदनमें पुष्प, पंडितको धनवान, भूपतिको दीर्घ जीवी, नहीं किया । (जानपड़ता है पहिले विधाताको कोई बुद्धि देनेवाला नहीं हुआ ॥ ३ ॥

सर्वौषधीनाममृता प्रधाना सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम् ॥ सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥

(छंद) अमिय प्रधान सकल औषधि महँ, सकल सुख महँ असन प्रधान । सब गात्रन महँ शीश मुख्य है, । सब इंद्रि महँ नयन प्रधान ॥ ४ ॥

अर्थ–सर्व औषधियोंमें गिलोय प्रधान है. सम्पूर्ण सुखोंमे

भोजन प्रधान है । सर्व इन्द्रियोंमें नयन प्रधान है,सब अंगोंमें शिर प्रधान है ॥ ४ ॥

दूतो न सचरति खे न चलेच्चवार्ता पूर्वं न जल्पितमिद न च संगमोस्ति ॥ व्योम्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं जानाति यो द्विजवर स कथ न विद्वान् ५॥

[छंद] नहिं चर जात न बात चलति यह, पूर्व न कथित न संयम होय । नभथित रविशशि ग्रहण जान जो, ब्राह्मण वर किमि बुध नहिं सोय ॥ ५ ॥

अर्थ-दूत आकाशमें नहीं जाता, और न बात चलती, यह पहिले किसी ने नहीं कह रखा, और, न मेल होता है । आकाशमें स्थित चंद्र सूर्यका ग्रहण जो द्विजश्रेष्ठ जानता है ॥ वह कैसे पंडित नहीं है ॥ ५ ॥

विद्यार्थी सेवक पांथ क्षुधार्तो भयकातर ॥ भांडारी प्रतिहारश्च सप्त सुप्तान् प्रबोधयेत ॥ ६ ॥

दोहा–छात्र, दास, पंथी क्षुधित, कनहार भंडार ॥ सोवत सात जगावही; भय कातर प्रतिहार ॥ ७ ॥

अर्थ-विद्यार्थी, नौकर, पथिक भूख से व्याकुल, तथा भय से व्याकुल भंडारी तथा द्वारपाल इन सातको सोये हुए जगा दे।

अहिं नृपं च शार्दूलं किटिं च बालकं तथा ॥ परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुप्तान्न बोधयेत् ॥ ७ ॥

दोहा—सर्प नृपति बालक तथा, किटिं सिंह पर श्वान। इन सातन न जगावही, सोवत नरन अजान ॥ ८ ॥

अर्थ-सर्पको, राजाको, सिंहको, और किटिको तथा बालकको दूसरेके कुत्तेको, तथा मूर्ख, इन सात-सोते हुओंको न जगावे ॥ ७ ॥

अर्थाधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्नभोजिनः ॥ ते द्विजाः किंकरिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगाः ॥ ८ ॥

दोहा—द्विज भक्षी शूद्रान्न जो, श्रुति पढ़ धन हित जौन बिन विष पन्नगगन सरिस, का करि हैं द्विज तौन ॥ ९ ॥

अर्थ-जिन्होंने वेद धनके निमित्त पढ़े हैं वैसेही जो शूद्रका अन्न खानेवाले हैं । वे ब्राह्मण बिना विषके सर्पके समान क्या करेंगे ॥ ८ ॥

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः ॥ निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥ ९ ॥

दोहा—जिहि संतुष्ट न प्राप्ति धन, रूठे भय महिं जौन
कृपा दण्ड जिहि शक्ति नहिं, रूठि करिहि का तौन९॥

अर्थ—जिसके रूठनेसे भय नहीं, सन्तुष्ट होनेमें धनकी प्राप्ति नहीं, तथा जिसमें दंड देन, अनुग्रह करनेकी शक्ति नहीं है। वह रूठकर क्या करेगे ॥ ९ ॥

निर्विषेणापि सर्पेण कर्तव्या महती फणा ॥ विषमस्तु न चाप्यस्तु घटाटोपो भयंकरः ॥ १० ॥

सार बिन विष के पन्नग कहँ चाहिये, दरशावन फणभारी
विष होवै अथवा नहि होवै, घटाटोप भयकारी ॥ १० ॥

अर्थ—बिना विषके सर्पको भी बडा फन दिखाना चाहिये विष हो या नहो घटाटोप भयंकर होता है ॥ १० ॥

प्रातर्द्यूतप्रसंगेन मध्यान्हे स्त्रीप्रसंगतः ॥

रात्रौ चोर प्रसंगेन कालो गच्छति धी-
मताम् ॥ ११ ॥

[छंद] रात्रि चोर हरि कथाभागवत, द्यूत पौढु यश प्रात ।
मध्य नारि यश पढत राम ग्रंथ, समय बुधनकर जात ॥ १ ॥

अर्थ—प्रभात समय द्यूत प्रसंगवाले ग्रंथ महाभारतके, तथा, मध्यान्ह समय स्त्री प्रसंगके ग्रंथ रामायणके तथा रात्रिमें चोर प्रसंगवाले ग्रंथ श्रीमद्भागवतके पढनेमें बुद्धिमानोंका समय जाता है ॥ ११ ॥

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टच-
न्दनम् ॥ स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्र-
स्यापि श्रिय हरेत् ॥ १२ ॥

[टिप्पणी] प्रातः काल भारतके पढने से यह विचारे, कि द्यूत का फल कैसा हानि कारक होता है।

मध्यान्ह काल रामायण की कथा पढकर मनुष्य चरित्र कैसा रखना चाहिये इस बात का विचार करे। रात्रिको भागवत की कथा सुनकर यह विचार करे कि श्री कृष्ण चंद्र १६८०८ स्त्रियों के मध्यमें रहकर भी कैसे जितेंद्रिय थे, वैसा अनुकरण हमको भी करना चाहिये। क्योंकि कृष्णचंद्र जी जितेन्द्रियों के आदर्श थे ॥

दोहा—निज करको चंदन घिसो, निज करकी गूंत माल
निज कर कृत स्तोत्र अरु, संपति हर सुरपाल ॥ १२॥

अर्थ—अपने हाथकी गूँथी माला, अपने हाथका घिसा हुआ चंदन, अपने हाथका लिखा हुआ श्लोक, इन्द्रकीभी लक्ष्मी हर लेते हैं ॥ १२ ॥

इक्षुर्दहास्तिला· शूद्रा कांता हेम च मेदिनी ॥ चंदन दधि तांबूल मर्दन गुणवर्धनम् ॥ १३ ॥

(सार) ऊख तथा तिल शूद्र तथा दधि, महि चन्दन अरु नारी॥ताम्बूल हु कंचन को मर्दन, है गुण वर्धनकारी। १३

अर्थ—ऊख, तिल, शूद्र, स्त्री, सुवर्ण तथा पृथ्वी, चन्दन, तथा दही तथा पानका मर्दन करना गुण वर्धक है॥ १३ ॥

दरिद्रता धीरयता विराजते कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ॥ कदन्नता चोष्णतया विराजते कुरूपता शीलयुता विराजते ॥ १४ ॥

[छंद] दरिद्रता सोहति धीरता ते। कुरूपता सोहति शी-लता ते। कु अन्न है सोहत उष्णता ते। कुवस्त्रता सोहति स्व-च्छता ते ॥ १४ ॥

अर्थ-दरिद्रता धीरतासे सोहती है, कुवस्त्रता स्वच्छतासे शोभा पाती है। खराब अन्न गरम होनेसे शोभा पाता है, तथा कुरूपता शीलसे शोभित होती है ॥ १४ ॥

इतिश्रीचाणक्यनीतौ शिवदास पाँडेय कृत भाषा-टीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चय ॥ विद्यारत्नेन यो हीनं स हीन सर्ववस्तुषु ॥ १ ॥

दोहा—निश्चय वर धनवान नर, धन विहीन नहिं दीन। विद्या रत्न विहीन जो, वह सब वस्तुन हीन ॥ १ ॥

अर्थ-धनहीन हीन नहीं होता, वह निश्चयही धनी है। जो विद्यारूपी रत्नसे जो हीन है, वह सब वस्तुओंमें हीन है ॥ १॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पाद वस्त्रपूत पिवेज्जलम्

शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत्

दोहा—दृष्टि शोधि राखौचरण, वस्त्रछानि पियवारि।
शास्त्र शुद्ध कहु वचन कर, काज हृदय विचारि॥२॥

अर्थ—दृष्टिसे शोधकर चरण रक्खे, वस्त्रसे छानकर जल पीवे। शास्त्र से शुद्ध वचन बोले मन से विचार कर कार्य करे॥ २॥

सुखार्थी चेत्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत्यजेत्सुखम्॥ सुखार्थिनः कुतो विद्या सुखं विद्यार्थिनः कुतः॥ ३॥

दोहा—विद्याचाही तजहि सुख, विद्या तज सुख चाह।
सुख चाहिन विद्या कहाँ विद्यार्थिन धन काह॥ ३॥

अर्थ—सुख की इच्छा हो तो विद्याका त्याग करे विद्याकी इच्छा हो तो सुख का त्याग करे सुखार्थियों को विद्या कहाँ है विद्यार्थी को सुख कहाँ है २॥ ३॥

कवयः किं न पश्यन्ति किं न कुर्वन्ति

योषितः ॥ मद्यपा किं न जल्पंति किं न खादंति वायसा ॥ ४ ॥

दोहा—कविगण देखत काह नहिं, काह करत तिय नाहिं
मद्यप जल्पत काह नहिं, वायस काह न खाहिं ॥ ४ ॥

अर्थ—कवि क्या नहीं देखते स्त्रियाँ क्या नहीं करतीं । मद्यप क्या नहीं बकते । और क्या नहीं खाते ॥ ४ ॥

रंकं करोति राजानं राजानं रंकमेवच ॥ धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं विधि ॥ ५ ॥

दोहा—नृप कहँ करत दरिद्र अरु, दीनहिं करत भुआर।
धनद रंक रंकहिं धनद, कर विधि सिरजनहार ॥ ५ ॥

अर्थ—विधाता दरिद्री को राजा, तथा राजा को रंक, और धनियों को निर्धन तथा दरिद्रियों को धनवान करता है ॥ ५ ॥

लुब्धानां याचकः शत्रुर्मूर्खाणां बोधको रिपुः ॥ जारस्त्रीणां पतिः शत्रुश्चोराणां चंद्रमा रिपुः ॥ ६ ॥

दोहा—लोभिन याचक शत्रु अरु, ज्ञानद शत्रु गँवार ।
चोरन के अरि चन्द्रमा; पति अरि तियगन जार ॥६॥

अर्थ—लोभियों का याचक शत्रु है मूर्खों को ज्ञान देनेवाले शत्रु हैं। व्यभिचारिणी स्त्रियों का शत्रु पति है तथा चोरों का शत्रु चंद्रमा है ॥ ६ ॥

येषां न विद्या न तपो न दान न चापि शीलं न गुणो न धर्म ॥ ते मृत्युलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्च-रन्ति ॥ ७ ॥

छंद—जिन विद्या नहिं शील न गुण नहिं धर्म तपस्या अरू नहिं दान नर वपु मृत्यु जगत महँ विचरत भार रूप त मृगा समान ॥ ७ ॥

अर्थ जिनको न विद्या है न तप है न दान है तथा न शील है न गुण है न धर्म है वे मृत्युलोक में पृथ्वी के भार रूप मनुष्यरूप से मृगा घूमते हैं ॥ ७ ॥

अंत सारविहिनानामुपदेशो न जाय-

ते ॥ मलयाचलससर्गान्न वेणुश्चंदनाय ते ॥ ८ ॥

(सोरठा) लागत नहिं उपदेश, भीतर सार विहीन के। बाँस न चदन वेश, लह मलयाचल संग ते ॥ ८ ॥

अर्थ–भीतर से सार हीनों को उपदेश नहीं लगता मलयाचल की संगति से बाँस चदन नहीं होता ॥ ८ ॥

यस्य नास्ति स्वय प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किं ॥ लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पण किं करिष्यति ॥ ९ ॥

दोहा–शास्त्र करिहि तिहि काह धी, है जाके मति नाँहि। दर्पण करिहै काहमो, लोचन हीनन काँहि ॥ ९ ॥

अर्थ– जिसके बुद्धि नहिं है उसको शास्त्र क्या कर सका है नेत्रों से हीनको दर्पण क्या करेगा ॥ ९ ॥

दुर्जनं सज्जन कर्तुमुपायो नहि भूतले ॥ अपानं शतधा धौत न श्रेष्ठ मिन्द्रिय भवेत् ॥ १० ॥

दोहा—दुर्जन कहँ सज्जन करन, नाँहिं उपाय जहान।
थोर होत न घार शत, इन्द्रिय श्रेष्ठ अपान ॥ १० ॥

अर्थ—दुर्जन को सज्जन करने का उपाय पृथ्वी में नहीं है सैकड़ों बार धोई भी अपान इंद्रिय श्रेष्ठ इंद्रिय नहीं होती ॥ १० ॥

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः ॥
राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥

दोहा—द्वेष बड़न से मरण हो, सब क्षय द्वेष भुवार
शत्रु द्वेष धन नाश हो, द्विज अरिता, कुलछार ॥ ११ ॥

अर्थ—बड़ों के द्वेष से मृत्यु होती है शत्रु के द्वेष से धन का नाश होता है राजा के द्वेष से सबका नाश होता है तथा ब्राह्मण के द्वेषसे कुल का नाश होता है ॥ ११ ॥

वरं वने व्याघ्रगजेंद्रसेविते द्रुमालये पत्रफलाम्बुसेवनम् ॥ तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् ॥ १२ ॥

छंद–सेवन जल फल तृण शय्या भल व्याघ्र गजन सेवित बन माँहिं बल्कल भल धनसंग इमि पन बसब न भल बंधुन मन माँहिं ॥ १२ ॥

अर्थ–व्याघ्र तथा हाथियों से सेवित बड़े वृक्षवाले बन में पत्र फल तथा जल का सेवन तृण की शय्या तथा सौ वेगली का पुराना वल्कल भला है पर बंधुओं में निर्धन होकर जीना भला नहीं ॥ १२ ॥

विप्रो वृक्षस्तस्य मुलं च संध्या वेदाः
शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् ॥ तस्मान्मू-
लं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव शा-
खा न पत्रम् ॥ १३ ॥

छंद–धर्म कर्म हैं पत्र वृक्ष द्विज मूल शाख संध्या श्रुति चार रक्षिय मूल यत्न त तिहि तें तरु सम नाहि पत्र नाहिं डार॥१३॥

अर्थ–ब्राह्मण वृक्ष है उसकी जड संध्या है वेद शाखा हैं तथा धर्म कर्म पत्र हैं इस कारण मूल की यत्न से रक्षा करना चाहिये मूलके छिन्न होने में न शाखा रहती है न पत्र ॥ १३ ॥

माता च कमला देवी पिता देवो जना-

र्दनः ॥ बांधवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो-
भुवनत्रयम् ॥ १४ ॥

छंद–जननी कमला देवि पिता हैं वासुदेव देवेश, विष्णु भक्त
गन बंधु वर्ग सब, तीन लोक निज देश ॥ १५ ॥

अर्थ–लक्ष्मी देवी माता है तथा जनार्दन देवही पिता है
और विष्णु भक्त बांधव हैं तथा तीनोंलोक अपना देश है।१४।

एकवृक्षसमारूढा नानावर्णा विहंगमा॥
प्रभाते दिक्षु दशसु यांति का परिदे-
वना ॥ १५ ॥

दोहा–बैठे एकहि विटप पर, वर्णन अमित विहंग।
प्रात दिशा दश जात उडि, यह को शोक प्रसंग १५

अर्थ–एकही वृक्ष पर बैठे हुए अनेक वर्ण के पक्षी प्रभात होने
पर दशों दिशा में चले जाते हैं इसमें क्या दुःख ॥ १५ ॥

बुद्धिर्यस्य वलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो-
वलम्॥ वने सिंहो मदोन्मत्तो जंबुकेन
निपातित. ॥ १६ ॥

छंद—जिहि बुद्धि है बल तासु है, बल कहाँ कुमति मँझार
सन्मथ मद केहरिहिं मारयो, विपिन मध्य सियार ॥ १६॥
अर्थ—जिसको बुद्धि है उसको बल है निर्बुद्धि में बल कहाँ है
वन में मतवाले सिंह को सियार ने मार डाला ॥ १६ ॥

का चिंता मम जीवने यदि हरिर्विश्व-
भरो गीयते॥ नो चेदर्भकजीवनाय जन-
नीस्तन्य कथ नि सरेत ॥ इत्यालोच्य
मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलम्॥ त्व-
त्पादांबुजसेवनेन सतत कालो मया
नीयते ॥ १७॥

छंद—विश्वंभर हरि कहे जात तो का शंका मम जीवन कौंहि
यदि अस नाहिं तो क्षीर होत किमि पालन हित जननीउरमाँहि
हे कमलापति हे यदुनायक बार बार गुनि के इमि नाथ
तुव पादाम्बुज सेवन महँ नित मम समय बितायोजात १७
अर्थ—जो भगवान विश्वंभर कहे जाते हैं तो मेरे जीवन में
क्या शंका है यदि ऐसा न होता, तो बालक को जिवाने के
निमित्त उसकी माता के दूध कैसे निकलता इसी प्रकार बार
बार विचारकर हे यदुपति! हे लक्ष्मीपति! केवल तुम्हारे चरण

कमकोंके सेवन सेही मुझसे निरंतर सत्य विरागा जाता है॥ १७॥

गीर्वाणवाणीषु विशिष्ट बुद्धिस्तथापि भाषातरलोलुपोहम् ॥ यथा सुराणामसृते च सेविते स्वर्गांगनानामधरासवे रुचिः ॥ १८ ॥

छंद-हौं तदपि लोलुप भाषान्तर यदि शुभमनिबानी गीर्वान सेवन अमिय यद्दि चाहत सुर जिमि सुरतिय अधरासवपान ८

अर्थ-देववाणीमें यद्यपि उत्तम बुद्धिवाला हूँ तोभी मैं भाषा तरका लोलुप हूँ जैसे देवताओं की अमृतके सेवन करने में भी स्वर्ग की नारियों के अधर रूपी आसवमें रुचि होती है। ८

अन्नाद्दशगुण पिष्ट पिष्टाद्दशगुण पय ॥ पयसोऽष्टगुण मास मांसाद्दशगुण धृतम् ॥ १९ ॥

छंद-अंपिक पिसान अन्नते दशगुण, पय दशगुणहै अ पिष्ट

पिसान पयते मांस आठ गुण है अरु, पय ते पय दश गुणि स महान ॥ १९ ॥

अर्थ—अन्न से पिसान दशगुण है पिसान से दशगुणदूध है दूध से आठगुण माँस है तथा माँस से दशगुण घी है ॥ १९ ॥

शाकेन रोगा वर्धंते पयसा वर्धते तनुः॥
घृतेन वर्धते वीर्यं मांसान्मांसं प्रवर्धते॥

दोहा—बढ़त शाक ते रोग, दूध ते तन है मादत ।
घृत ते वर्धत वीर्य, माँस ते मासहि मादत ॥ २० ॥

अर्थ—शाक से रोग बढ़ता है दूध से शरीर बढ़ता है। घी से वीर्य बढ़ता है माँस से मांस बढ़ता है ॥ २० ॥

इति श्री चाणक्यनीतौ शिवदास पांडेय कृत
भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दातृत्व प्रियवक्तृत्व धीरत्वमुचितज्ञता ॥ अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वार, सहजा गुणा ॥ १ ॥

(छंद) धीरजबंत सुवक्ता दानी, होबो उचित विचार।
होत न मास प्रस्न कीनेते, स्वाभाविक गुण चार ॥ १ ॥

अर्थ–दाताहोना, सुवक्ता होना, धीरजवंत होना उचित, विचार होना, यह चार स्वाभाविक गुण हैं अभ्याससे नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयेत ॥ स्वयमेव लयं याति यथा राज्यमधर्मतः ॥ २ ॥

(छंद) आत्म पक्ष परित्याग करत जो, अन्यपक्ष स्वीकार जिमि अधर्म ते राज छरत यह, आपहिं तिमि संहार ॥ २ ॥

अर्थ–अपने पक्ष को जो त्यागकर अन्यके पक्षका आश्रय करताहै । वह आपही नाशको प्राप्त होता है जैसे अधर्म से राज्य ॥ २ ॥

हस्ती स्थूलतनु स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोंकुशो दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः ॥ वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो नगास्तेजो यस्य विराजते स-

बलवान् स्थुलेषू कः प्रत्ययः ॥ ३ ॥

छप्पय—हस्ती तनु स्थूल होत वश अंकुश से है ।
तातें अंकुश काह बराबरी हस्ती के है ॥
दीप प्रकाशित होत अहहि तम जात नसाई ।
तातें दीपक काह बराबरि तम ह्वै जाई ॥
पतितवज्र हत होत गिरि तातें सम गिरि कुलिश कहा ।
भारी तन विश्वास कह जाके तेज महान वह ॥ ३ ॥

अर्थ—हाथी स्थूल शरीर है वह अंकुश से वशीभूत होता है, क्या अंकुश हाथी के बराबर है। अंधकार दीपक के प्रज्वलित होने से नष्ट होताहै, क्या अंधकार दीपकके बराबर है, पर्वत वज्र से भी हत हुए गिरते हैं, क्या पर्वत वज्र की बराबरहैं जिसके तेज विराजमान होताहै, वह बली होता है, स्थूल शरीर वालों का क्या विश्वास है ॥ ३ ॥

कलौ दशसहस्राणि हरिस्त्यजति मेदिनीम् ॥ तदर्धं जान्हवीतोयं तदर्धं ग्रामदेवताः ॥ ४ ॥

दोहा—अयुत वर्ष बीते तजत, महि कलि महँ घनश्याम।
तासु अर्ध महँ गंग जल, तासु अर्ध सुर ग्राम ॥ ४ ॥

अर्थ—कलि में दश सहस्र वर्ष बीतने पर विष्णु पृथ्वी को त्याग देते हैं, तिससे आधे में गंगाजल तथा तिसके आधेमें ग्राम देवता ॥ ४ ॥

गृहासक्तस्य नो विद्या नो दया मांसभोजिनः ॥ द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रता ॥ ५ ॥

दोहा—विद्या नहिं गृह लोलुपहिं, दया न मांस अहारि।
द्रव्य लालचिहिं सत्य नहिं, शौच नहिं वशनारी॥५ ॥

अर्थ—गृहासक्त पुरुषों का विद्या प्राप्त नहीं होती, मांसभोजियों के दया नहीं होती, द्रव्य लालची के सत्य नहीं होता, तथा स्त्री के वशीभूत को शौच नहीं होता ॥ ५ ॥

न दुर्जनः साधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपि शिक्षमाणः ॥ आमूलसिक्तः पयसा घृतेन न निंबवृक्षो मधुरत्वमेति ॥ ६ ॥

दोहा-दुर्जन लहत न साधु गति, शिक्षित विविध प्रकाश
पय घृत सींचों नीम तरु, जड न मधुरता धार ॥ ६ ॥

अर्थ—बहुत प्रकार से सिखायाहुआ दुर्जन साधुपनाको, प्राप्त नहीं होता। भली प्रकार मूलसे सींचा हुआ नीम वृक्ष मधुरताको नहीं प्राप्त होता ॥ ६ ॥

अन्तर्गतमलो दुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि॥
न शुद्ध्यति यथा भाण्डं सुराया दाहितं-
च तत् ॥ ७ ॥

सार—अंतर मलधारी शठ तीरथ, मज्जन शुद्ध न होई।
मदिरापात्र न शुद्ध होत जिमि, दाहो अनल महँ सोई ७

[अर्थ) अंतरमें विकार धारी पापी पुरुष सैकडों तीर्थोंके स्नान से भी शुद्ध नहीं होता। जैसे जलायाहुआ भी मदिराका पात्र शुद्ध नहीं होता ॥ ७ ॥

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तं सदा
निन्दति नात्र चित्रम् ॥ यथा किराती
करिकुम्भलब्धां मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति
गुञ्जाम् ॥ ८ ॥

[छंद] का अघरज यह निंदत सो तिहि, जो जेहि गुणन न जान सदार। यथा किराती मुक्ता कारि गज, त जिके धारत गुंजाहार ॥ ८ ॥

[अर्थ]-जो जिसके श्रेष्ठ गुणोंको नहीं जानता, वह उसकी निरंतर निंदा करताहै इसमें आश्चर्य क्याहै।

जैसे भीलनी हाथीके गण्डस्थलमें मिले हुये मोतियों को त्याग गुंजा धारण करती है ॥ ८ ॥

येतु सवत्सर पूर्ण नित्य मौनेन भुंजते
युगकोटिसहस्र ते पूज्यते स्वर्गविष्टपे॥

दोहा–पूर्ण वर्ष भरि मौन ह्वै, जो नित करत अहार,
सुरपुर पूजित होत ते, नर युग कोट हजार ॥ ९ ॥

[अर्थ]-जो पूर्णवर्षभरि नित्य मौन होकर भोजन करते हैं। वे सहस्र कोटि युग तक स्वर्गमें पूजे जाते हैं ॥ ९ ॥

कामक्रोधौ तथा लोभ स्वादु शृंगार-कौतुके॥ अति निद्रातिसेवे च विद्यार्थी त्वष्ट वर्जयेत ॥ १० ॥

दोहा -काम क्रोध अतिसेव अरु, लोभ स्वाद शृङ्गार ।
अति निद्रा कौतुक तजहि, विद्या चाहनहार॥ १० ॥

[अर्थ] काम, क्रोध, तथा लोभ स्वाद शृङ्गार, तथा कौतुक, अति निद्रा, अति सेवा, यह आठ वस्तु विद्यार्थी त्याग देवे ॥ १० ॥

अकृष्टफलमूलानि वनवासरति सदा ॥
कुरुतेऽहरह श्राद्धमृषिर्विप्र॰स उच्यते॥

छंद-भूमिम अकृषि साय फल मूलौं, करत श्राद्ध नित जोई । नित दिन रत वनवास विप्रवर, कहो जात ऋषि सोई ॥ ११ ॥

अर्थ-बिना जोती भूमिसे उत्पन्न हुए फल मूलका भोजन, निरंतर वनवासमें प्रीति, तथा [जो] निरंतर श्राद्ध करता है, वह ब्राह्मण ऋषि कहा जाता है ॥ ११ ॥

एकाहारेण सतुष्ट षट्कर्मनिरत॰सदा॥
ऋतुकालाभिगामी च स विप्रो द्विज
उच्यते ॥ १२ ॥

छंद-तुष्ट एकही बार आसनते, ऋतु तिय रति पर जो है। सदा निरत षट कर्म विमषर, कह्यो मात द्विज सोई १२

अर्थ-एकही बारके भोजन से संतुष्ट, सदा षट्कर्म निरत, तथा [जो] ऋतुकालमें स्त्री प्रसंगकारी है वह ब्राह्मण द्विज कहा जाता है ॥ १२ ॥

लौकिके कर्मणि रत पशूना परिपालकः॥ वाणिज्यकृषिकर्मा य. स विप्रो वैश्य उच्यते ॥ १३ ॥

छंद-करत कृषी वाणिज्य तथा, रत कृत ससारी जोई विप्र पशुनगण पालनकारी, वैश्य कहावत सोई ॥ १३ ॥

अर्थ संसारके कामोंमें प्रीति धारी, पशुओंका पालनकरनेवाला, तथा जो वाणिज्य तथा खेती करनेहारा है वह ब्राह्मण वैश्य कहा जाता है ॥ १३ ॥

लाक्षादितैलनीलीना कौसुमभमधुसर्पिषां ॥ विक्रेता मद्यमांसाना स विप्र शूद्र उच्यते ॥ १४ ॥

छंद–मधु घी कुसुम तेल लाक्षादिक, तथा नीलको बेचनहार। मद मांसादिक को विक्रेता, कहो शूद्र वह विप्र कुमार ॥ १४ ॥

अर्थ–लाख इत्यादि, पदार्थ, तेल, नील, कुसुम, मधु, घी, मद्य तथा मांस का बेचनेवाला ब्राह्मण शूद्र कहा जाता है ॥ १४ ॥

परकार्यविहंता च दांभिकः स्वार्थसाधकः छली द्वेषी मृदु क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते ॥ १५ ॥

छंद–द्वेषी छली क्रूर मृदु दांभिक, अरु परकाज बिगारनहार। कहोजात मार्जार विप्र है, अरु स्वारथ निज साधनहार ॥ १५ ।

अर्थ–दूसरके कार्यका नष्ट करनेहारा, और पाखंडी, स्वार्थ साधक, छली तथा द्वेषी मृदु तथा क्रूर ब्राह्मण मार्जार कहा जाता है ॥ १५ ॥

वापीकूपतडागानामारामसुरवेश्मनाम् ॥ उच्छेदने निराशंकः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ १६ ॥

छंद– कूप बावली तथा सरोवर, सुरमंदिर अमराई ।
नाश करत महँ होत न शक्ति, सो द्विज म्लेक्ष कहाई ॥ १६ ॥

अर्थ–वापी कूप तडाग, तथा अमराई, देवमंदिरके नाश करनेमें शंका न करनेहारा ब्राह्मण म्लेच्छ कहाजाताहै ॥

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराभिमर्शनम् ॥
निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चांडाल उच्यते ॥ १७ ॥

छंद– सुरधन गुरुधन मरु रतिकारी, बलसमेत पर नारि ।
सब प्राणिनसों निर्वाहन द्विज, कह्यो जात चांडाल ॥ १७ ॥

अर्थ–देवद्रव्य, गुरुद्रव्य, तथा पर स्त्रीसे बल पूर्वक भोग करनेहारा तथा सब प्राणियोंसे निर्वाह करनवाला विप्र चांडाल कहा जाताहै ॥ १७ ॥

देयं भोज्यधनं धनं सुकृतिभिर्नो संचयस्तस्य वै श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता ॥ अस्माकं मधु दानभोगरहितं नष्टं चिरात्संचितं

निर्वाणादिति नष्टपादयुगलं घर्षत्यहो मक्षिका ॥ १८ ॥

[छप्पय]देव भोज्य धन द्रव्य तथा सुकृतीन नरनको संचित उचित न तासु उपार्जित निश्चय धनको ॥
बलि विक्रम श्री कर्ण सुयश अबलों जग छायो ।
हमरो नाश्यो दान भोग बिन शहद कमायो ॥
अमित काल संचित कियो, यहि विधि नष्ट विषाद है।
मधु हित शोकित युगल निज, घिसत मक्षिका पावहै १८

अर्थ—पुण्यात्माओं को भोजन के योग्य धन, तथा द्रव्य देना चाहिये । निश्चय करके उसका संचय न करना चाहिये श्रीकर्ण, बलि, तथा विक्रमकी कीर्ति अबतक स्थित है, दान, तथा भोग से रहित बहुतकालसे संचित कियाहुआ हमारा मधु नष्ट होगया है इसप्रकार नष्टहोनेसे मष्ट है । कि माक्षिका अपने दोनो पैरोंको घिसा करती है ॥ १८ ॥

इतिश्रीचाणक्यनीतौ शिवदास पौड्य कृत भाषा-
टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ अथ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सानंदं सदनं सुतास्तु सुधियः कांता-प्रियालापिनी॥इच्छापूर्ति धनं स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञापरा सेवकाः ॥ आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे॥साधोः संगमुपासते च सततन्यधो गृहस्थाश्रमः ॥ १ ॥

[छप्पय] गृह आनंद ते पूर्ण,तथा प्रियवादिनि नारी।
अतिथि जनन सत्कार, भृत्यगन आज्ञाकारी ॥
इच्छापूरक द्रव्य, प्रीति उत्तम निज बाला ।
सगति पावन परम, साधु जनकी सब काला ॥
दोहा-जल भोजन मिष्टान्न नित,सेव सदा शशि धवनकर
गृह आश्रम इमि धन्य है,सुवन परम मतिमान वर॥ १

अर्थ-घर आनंदसे पूर्ण, तथा बुद्धिमान पुत्र तथाप्रियवादिनी स्त्री इच्छा पूर्तिकारक धन, एवं अपनी स्त्री में प्रीति

अपनी आज्ञाके पालक सेवक, अतिथि-सेवा, शिवपूजन प्रतिदिन गृहमें मिष्टान्न भोजन तथा पान, निरंतर साधुजनोंकी संगति, इसप्रकारका गृहस्थाश्रम धन्य है ॥ १ ॥

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च यच्छ्रद्धया स्वल्पमुपैति दानम् ॥ अनंतपारं समुपैति राजन् यद्दीयते तन्न लभेद्द्विजेभ्यः

छंद भारत द्विजन दया सहित सह, दियो जात जो दान। दियो द्विजन ना लियो जात नहिं, सो नृप होत महान ॥ २ ॥

अर्थ—दुखी ब्राह्मणों में दयाभाव युक्त; जो श्रद्धासे थोडासी दान दिया जाय, हे राजन ! वह अनंतताको प्राप्त होता है, वह ब्राह्मणों से नहीं लिया जाता ॥ २ ॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने, प्रीतिः साधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जने चार्जवम् ॥ शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता, इत्थं ये पुरुषा कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥ ३ ॥

[छप्पय] मानव विद्यावान, जनन सन्मुख सरलाई ।
चातुरता निज जनन, अधम जन गन अधमाई ॥
प्रीति साधु जन सग, दया पर जन पर करई ।
क्रोध गर्व खल नरन, क्षमा गुरु जन हित धरई ॥
नारी जन सम मूर्तता, अरिजन सन्मुख शौर्यवर ॥
तिनही ते मर्याद जग, जे इहिविधि गुण कुशलनर ॥२॥

अर्थ–अपने परिवारमें दक्षता, दूसरे मनुष्यों में दया दुर्जनों में निरंतर शाठ्य, साधु जनोंमें प्रीति दुष्टजनोंमें अभिमान, तथा पंडितों में नम्रता तथा शत्रुओंमें शूरता, गुरुजनों में क्षमा, स्त्रियोंमें धूर्तता, ऐसे जो पुरुष कौशल में चतुर होते हैं। तिनकीही लोकमें मर्यादा रहे ॥२॥

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ, नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ ॥ अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुंगं शिरो, रे रे ज

म्बुक मुंच मुंच सहसा नीचं सुनिंद्यं व-
पुः ॥ ४ ॥

[छप्पय) उभय विलोचन रहित, साधु दर्शन ते आहीं। दीन्यों कबहूं दान, युगल हाथन ते नाहीं ॥ तीर्था श्रम न पयान, कीन नाँहीं युग चरनन ॥ सरस्वती ते द्रोह, अहर्हि राखत युग श्रवनन ॥ उन्नत मस्तक गर्व से अनय द्रव्य पूरण उदर ॥ रे रे जम्बुक शीघ्रही इमि निन्दितवपु त्याग कर ॥ ४ ॥

अर्थ–हाथ दानसे रहित, तथा श्रवण सरस्वती से द्रोहकारी हैं। दोनों नेत्र साधु दर्शन से रहित, तथा चरण तीर्थको नहीं गये ॥ अन्याय से उत्पन्न किये धनसे ही जिनका उदर पूर्ण है, तथा गर्वसे शिरऊंचाही रहता है रे। रे॥ जम्बुक। शीघ्रही ऐसे निन्दित शरीरका त्यागकर ॥ ४ ॥

येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्ति भक्तिर्नराणां येषामाभीरकन्याप्रिय-गुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा ॥ येषां श्री-

कृष्णलीलाललितरसकथासादरौ नैव-
कर्णौ, धिक् तान् धिक् तान् धिगेतान्क-
थयति सततं कीर्तिनस्थो मृदंगः ॥५॥

[सवैया] मानवकी जिह्वा प्रीति नहीं यशुदासुत के पद पंकज माहीं गोप सुता प्रिय के गुण वर्णन में रसना जिनकोकुप नाहीं ॥ सुंदर कृष्ण चरित्रन मे जिन कर्ण नहीं युत आदर आहीं ॥ गान समैहि मृदंग सदा कहहै धिक है धिक है तिन काहीं ॥५ ॥

अर्थ—जिन मनुष्योंको यशोदासुत कृष्णके चरणोंमें प्रीति नहीं है। जिनकी जिव्हा व्रजगोपियोंके प्रिय श्रीकृष्णके गुण कथन में अनुरागिनी नहीं है।जिनके श्रवण श्रीकृष्णकी सुन्दर लीला भरी कथाओंमें आदरवाले नहीं हैं। इसप्रकारके उन [मनुष्यों] को धिक्कार है उनको धिक्कार है उनको धिक्कार है ॥ इसप्रकार निरंतर कीर्तन स्थित मृदंग कहता है ॥५॥

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसंत-
स्य किं नोलूकोप्यवलोकते यदि दिवा

सूर्यस्य किं दूषणं ॥ वर्षं नैव पतेत्तु चातकमुखे मेघस्य किं दूषण, यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षम. ॥ ६ ॥

सवैया—पत्र करीर नहीं यदि हैं कछ दोष अहै ऋतुराजहि काँहीं। है कछ दोष प्रभाकर में यदि नाँहि उलूक लखै दिन माँहीं ॥ वर्षत चातकके मुख नाँहि कहा तव दूषण वारिद पाँहीं। भाल लिख्यो विधि जो तिहिको अस कौन समर्थ मिटावन नाहीं ॥ ९ ॥

अर्थ—जो करीलके वृक्षमें पत्ते नहीं हैं, तो वसंतका क्या दोष है जो उल्लूके दिनमें नहीं देखता, तो सूर्यका दूषण क्या है,? चातकके मुखमें वर्षा नहीं होती, तो मेघका क्यों दूषण है? जो पहिले विधाताने मस्तकमें लिख दिया है उसे मिटानेको कोन समर्थ है। ॥ ९ ॥

सत्संगाद्भवति हि साधुता खलानां साधूनां न हि खलसंगतः खलत्वम् ॥ आमो

दं कुसुममव मृदेव धत्ते मृद्गंधं नहि कुसुमानि धरयान्ति ॥७॥

दोहा—उदत साधुता सत्त सुसंगते साधु न सत्पन सत्त संग मांहि। मृत्तिका धारत पुष्प गंध सई, पुष्प गंध मांहि धारत मांहि ॥ ७॥

अर्थ-दुर्जनोंको सत्संगोंसे साधुता होतीही है, सज्जनोंकी संगतिसे साधुओंका दुष्टता नहीं होती ॥ मिट्टीही फूलोंकी गंधिको धारण करती है, पुष्प मिट्टीकी गंधिको नहीं धारण करते ॥७॥

साधूना दर्शन पुण्यं तीर्थभूताहि साधव ॥ कालेन फलते तीर्थ सद्य: साधु समागम ॥८॥

दोहा—साधु ताहि ते तीर्थ वपु, दर्श पुण्य वपु सत ।
तीर्थ समयपर देत फल, साधु प्रसंग तुरत ॥ ८ ॥

अर्थ-साधुओंका दर्शन पुण्यरूप है, निश्चय करि साधु जन तीर्थरूप हैं, तीर्थ समयपर फल देता है। साधुओंका समागम तत्काल फल देता है॥८॥

विप्रास्मिन् नगरे महान् कथय कस्ता-
लद्रुमाणां गणः॥को दाता रजको ददा-
ति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि॥को दक्षः
परवित्तदारहरणे सर्वोपि दक्षोजनः॥क-
स्माज्जीवसि हे सखे विषकृमिन्यायेन
जीवाम्यहम् ॥ ९ ॥

कवित्त—विप्र यहि नगर महान कौन भाषहु तौ—
ताड़नके वृक्षको समूहही महान है ।
दाता कौन रजक है प्रातकाल वसनको
देत माहि रात्रिकाल मौंहि यश भाग है ॥
कौन है सुजान परधन अरु नारिन के
ग्रहण करन मौंहि सकल सुजान है ।
मीत किहि भाँति यहि नगर में जीवत हो
विष कृमि न्याय हम जीवत प्रमान है ९॥

अर्थ—हे मित्र ! इस नगरमें बड़ा कौन है ? कहो, ताड़के वृक्षोंका समूह बड़ा है दाता कौन है ? धोबी, क्योंकि

सवेरे लेकर रात्रिको देदेता है। चतुर कौन है? परायाय न तथा अंकि ग्रहण करनेमें सबही जन चतुर हैं, हे मित्र। जिस प्रकार इस नगरमें जीते हो विष कृमि न्यायसे मैं जीता हूं॥९

न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्र ध्वनिगर्जितानि ॥ स्वाहास्वधाकारवि वर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥ १० ॥

छंद–द्विज पादोदक कीच नाहिं अरु, वद शास्त्र ध्वनि गर्जन नाहिं। स्वाहा स्वधा विहीन शब्द है, तेघर मृतक भूमि सम नाहिं ॥ १० ॥

अर्थ–जहाँ ब्राह्मणोंके चरणोंके जलसे कीच नहीं है। वेद शास्त्र की ध्वनिकी गर्जना नहीं है॥ तथा स्वाहा, स्वधाकार शब्दसे भी रहित है, वे घर श्मसानकी समान है॥ १० ॥

सत्य माता पिता ज्ञान धर्मो भ्राता दया सखा॥ शांति पत्नी क्षमा पुत्र षडेते मम बांधवा॰ ॥ ११ ॥

सार–ज्ञानपिता तियशांति तथाहै क्षमासुवन सतमाता

दयामित्र यह षट सौंधव मम, धर्म अहहि ममभ्राता ॥

अर्थ—सत्य माता है, ज्ञान पिता है, धर्म भाई है, दया मित्र है। शांति स्त्री है, क्षमा पुत्र है यह छः मेरे बंधु हैं॥११॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वत ॥ नित्यं सन्निहितो मृत्यु कर्त्तव्यो धर्मसंग्रह ॥ १२ ॥

दोहा—वैभव शाश्वत नित्य नहिं, अहहिं शरीर अनित्य
तातें संग्रह धर्म कुरु, मृत्यु समीपहि नित्य ॥ १२ ॥

अर्थ—शरीर अनित्य है, तथा विभव निरंतर स्थायी है, मृत्यु नित्यही समीप है, [इसलिये) धर्मका संग्रह करना उचित है॥१२॥

निमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावो नवतृणोत्सवा ॥पत्युत्साहयुता भार्या अहं कृष्ण रणोत्सव· ॥ १३ ॥

दोहा—विप्र निमन्त्रण प्रिय तथा, नव तृण उत्सुक गाय
उत्सुक पति तिय प्रातिकी, मैं रण प्रिय यदुराय १३॥

अर्थ–ब्राह्मण निमंत्रणमें सन्तुष्ट है, गौएं नवीन तृणकी सन्तुष्ट हैं, स्त्री पति प्राप्तिकी सन्तुष्ट है। हे कृष्ण! मैं रण का सन्तुष्ट हूं ॥ १३ ॥

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्॥ आत्मवत्सर्वभूतानि य पश्यति स पश्यति ॥ १४ ॥

छंद–परधन लोष्ठ समान अन्यतिय, लखत मातु सम जोई। सब प्राणिन निज सरिस हि जानत निश्चय देखत सोई ॥ १४ ॥

अर्थ–पर स्त्रियोंको माताके समान, पर द्रव्यको मिट्टीके ढेलेके समान सब प्राणियोंको अपनी समान जो देखता है, वही बुद्धिमान है ॥ १४ ॥

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता, मित्रे वचकता गुरौ विनयता चित्तेऽतिगम्भीरता ॥ आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता, रूपे सुंदरता शिवे भजनता त्वय्यास्ति भो राघव ॥ १५ ॥

छप्पय—मधुराई मुख माँहि, तथा उत्साह दानमहँ
चित महँ अति गाँभीर्य, रहितता कपटमित्रपहँ
शुचिताई आचार, रसिकताई गुण माँहीं।
शास्त्रन महँ विज्ञान, भजनता अरु शिवपाँहीं॥
तत्परता दृढ धर्म महँ, सुंदरताई रूप धर।
विनय शीलता गुरुन सम, तुम महँ राघव धनुधर॥ १५॥

अर्थ—धर्ममें तत्परता, मुखमें मधुरता, दानमें उत्साह मित्रसे छल रहितता, गुरुसे नम्रता, चित्तमें गंभीरता, आचारमें शुद्धता, गुणमें रसिकता शास्त्रमें ज्ञान, रूपमें सुंदरता, शिवमें भजनता, (भक्तिता) हे राम! यह सब गुण तुममें हैं॥ १५॥

काष्ठं कल्पतरु सुमेरुरचलश्चिंतामणिः प्रस्तर॥सूर्यस्तीव्रकर शशी क्षयकर. क्षारोहि वारां निधि कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्य पशु.कामगौर्नोतां

स्ते तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा
दीयते ॥ १६ ॥

छप्पय—काष्ठ कल्पतरु अहहि, मेरु गिरि अचल
महाना। चिंतामणि पाषान, किरण धारक हैं भाना॥
क्षयधारक शिवनाथ, वारि आकार है खारी। काम
शरीर विहीन, सुवन दितिबलि रणकारी १ अहहि
भूसुर नित्यपशु, तुम सम देखत नाँहि इन। रामच-
न्द्र रघुवंश मणि, दई जाहि उपमा जु किन॥ १६॥

अर्थ—कल्पतरु काष्ठ है, सुमेरु पर्वत अचल है। चिन्ता
मणि पत्थर है, सूर्य तीव्र किरणवाला है चन्द्रमा क्षयधारक
है, वारिनिधि खारा है, कामदेव शरीर हीन है राजाबलि
दितिपुत्र है। कामधेनु निरंतर पशु है, हे राम। इनको
तुम्हारी बराबर नहीं देखता, तो किसकी उपमा दीजाय १६॥

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु
च॥ व्याधिस्थस्यौषधं मित्रं धर्मो मि-
त्रं मृतस्य च॥ १७॥

दोहा—विद्या मित्र प्रवास महँ नारि मित्र गृह माँहि
मित्र औषधी व्याधि महँ, धर्म मित्र मृत कौंहि ॥१

अर्थ—परदेशमें विद्या मित्र है, और घरमें भार्या मित्र
और रोगीकी औषधि मित्र है, और मृतकका धर्म मित्र

विनय राजपुत्रेभ्यःपंडितेभ्य सुभाषि
तम् ॥ अनृतं द्यूतकारेभ्यःस्त्रीभ्यःशिक्ष
त कैतवम् ॥ १८ ॥

दोहा—बुधजन सन भाषण शुभग,भाषण असत जुवाँरि
सिखय विनय नृप सुतन तन,तथा कपटता नारि१८

अर्थ—राजपुत्रों से विनय, पंडितों से सुभाषण, जुआरियों
से असत्यभाषण तथा स्त्रियों से कपट सीखै ॥ १८ ॥

अनालोक्य व्यय कर्ता अनाथ कलह
प्रिय ॥ आतुर सर्वक्षेत्रषु नरः शीघ्र
विनश्यति ॥ १९ ॥

दोहा—बिन ... तुरस्त्रियन सब अरु प्रिय कलह मँझार
नर होतहै ... नर ... न विचार ॥ १९ ॥

अर्थ-बिना विचारे खर्च करने वाला, स्वामिहीन कलह प्रिय सब भांतिकी स्त्रियों में भोग करने को आतुर मनुष्य शीघ्र नाश होजाता है ॥ १९ ॥

नाहार चिंतयेत्प्राज्ञो धर्ममेकहि चिंतयेत ॥ आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते ॥ २० ॥

(छंद) करहि न चिन्ता चित्र असनकी निश्चय कर सुधर्म विचार ॥ क्यों की मानव गणन संगही, प्रगट होत है अवशि अहार ॥ २० ॥

अर्थ-बुद्धिमान भोजन की चिन्ता न करे, निश्चय करके एक धर्म काही विचार करे क्योंकि भोजन मनुष्यों के जन्म के साथ प्रगट होता है ॥ २० ॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणे तथा॥ आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्ज: सुखी भवेत ॥ २१ ॥

[छंद] धन अरु धान्य प्रयोग माँहि अरु, सेवहि विद्या

ग्रहण प्रहार, सुखी होत व्यवहार माँहि है, मानव लज्जा त्यागनहार ॥ २१ ॥

अर्थ—धन धान्य के प्रयोगमें तैसेही विद्याके ग्रहणमें और भोजन में व्यवहार में लज्जा का त्यागनेहारा सुखी होताहै॥२१

जलबिंदुनिपातेन क्रमशःपूर्यते घटः ॥ स हेतु.सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥ २२ ॥

[छंद] जलकी बूंद बूंद उपजन से, क्रम क्रमशः ही घट भरि जाहि। यह क्रम सब विद्या धन को भरु, तथा धर्म संचय को आहि ॥ २२ ॥

अर्थ—जलकी बूंद बूंद के गिरनेसे, क्रमशः घडा भर जाता है यह क्रम सब विद्याओंका, धर्म का तथा धन के संचय का भी कारण है ॥ २२ ॥

वयस.परिणामेऽपि यःखल. खल एव. स. ॥ सपक्कमपि माधुर्यं नोपयातींद्रवारुणाम् ॥ २३ ॥

(छंद) वयस अत महँ अहहि दुष्ट जो, रहते हुए है सोई इंद्रायण फल पको भली विधि, तदपि मधुर नहि होई ॥२१॥

अर्थ–अवस्था के अन्तकाल मे भी जो खल है, वह खलही रहता है, भली प्रकार पका भी इन्द्रायण मधुरता को प्राप्त नहीं होता ॥ २१ ॥

इतिश्री चाणक्य नीतौ शिवदास पौंड्यकृत,
भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३ ॥

मुहूर्तमपिजीवेच्च नर शुक्लेन कर्मणा॥ न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना ॥ १ ॥

छद–शुद्धकर्मत नर मुहूर्त लौं, जियहिं सफल तो आहीं।
कलपभर्म दुहुलोक विरोधी ष्ठुभ फलपद सो नाहीं ॥ १ ॥

अर्थ–मनुष्य उत्तमकर्म मुहूर्तमात्रभी जीवें, तो सफल है दोनोंलोक विरोधी कर्म कल्प पर्यंत अविनभी भला नहीं है॥१॥

गते शोको न कर्तव्यो भविष्यनैव चिं-

तयेत ॥ वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते विचक्षणाः ॥ २ ॥

दोहा—शोक न बीते कर उचित; करहिं न भावि विचार
वर्तमान अनुसारही, वर्तत पुरुष उदार ॥ २ ॥

अर्थ—बीतेहुएका शोक न करना चाहिये, होनहारका विचार न करे । विचक्षण पुरुष वर्तमानकालके अनुसार वर्ताव करते हैं ॥ २ ॥

स्वभावेन हि तुष्यति देवाः सत्पुरुषाः पिता ॥ ज्ञातयःस्नानपानाभ्यां वाक्यदानेन पण्डिताः ॥ ३ ॥

दोहा—सुर पितु तथा महाजन; तुष्ट स्वभावहिं होत ।
वाक्य दान ते विज्ञ जन, स्नान पान जनं गोत ॥ ३ ॥

अर्थ—देवता, महात्मा तथा पिता स्वभावसेही सन्तुष्ट होते हैं । ज्ञातिजन स्नान पानसे, तथा पंडितजन सुवाक्यसे ॥

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव

व च ॥ पञ्चैतानि च सृज्यते गर्भस्या-स्यैव देहिन ॥ ४ ॥

दोहा–आयु कर्म अरु धन तथा, विद्या दयस निदान
यह देहिनके गर्भही, पाँच होत निमान ॥ ४ ॥

अर्थ–अवस्था कर्म, और धन विद्या, तथा मृत्युभी यह पांचो देहधारीके गर्भमें स्थितिके समयही सृजे जाते हैं ॥ ४ ॥

अहो वत विचित्राणि चरितानि महात्मनाम ॥लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमति च ॥ ५ ॥

दोहा–अहो महा अचरज भर, मानव चरित महान ।
नमत लक्ष्मी मानते मान । तृणहि समान ॥ ५ ॥

अर्थ–आश्चर्यरूप महात्माजनोंके विचित्र चरित्र हैं । मलक्ष्मीको तृणके समान मानते हैं । और उसके भारसे झुक जाते हैं ॥ ५ ॥

यस्य स्नेहो भय तस्य स्नेहो दुःखस्य

९

भाजन ॥ स्नेहमूलानि दुःखानि तानि त्यक्त्वा वसेत्सुखम् ॥ ६ ॥

दोहा—नेह मूल है क्लेशकर, जाहि नेह तेहि त्रास ।
त्यागि नेह कहँ ताहि नर सुखयुत करहि निवास ॥ ६ ॥

अर्थ—जिसका स्नेह है, उसीको भय है स्नेह दुःखका पात्र है। स्नेह दुःखका मूल है। उस स्नेहको त्यागकर सुख पूर्वक निवास करे ॥ ६ ॥

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ॥ द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥ ७ ॥

समाः ॥ राजानमनुवर्नन्ते यथा राजा तथा प्रजा ॥ ८ ॥

छंद–पापी पापी धर्मी धम , सम नृप होत समान। मनुवर्तन है करत नृपतिको, जिमि नृप तथा प्रजान ॥ ८ ॥

अर्थ–राजा राजाके धर्मी होने से धर्मी पापी होने से पापी सम होने से समान; होती है। इस प्रकार राजा का अनुवर्तन करती है॥ जैसा राजा होता है, वैसीप्रजा होती है ॥ ८॥

जीवन्त मृतवन्मन्ये देहिन धर्मवर्जितम ॥ मृतो धर्मेण सयुक्तो दीर्घजीवी न सशय ॥ ९ ॥

छंद–जीवित धर्म हीन देही का, मानत मृतक समान। धीरी देह मरोसय जीवित, मृतक सधर्म महान ॥ ९ ॥

अर्थ–धर्म से वर्जित जीते हुए देही को मृतक के समान मानता हूं। धर्मयुक्त मृतक भी निसंदेह दीर्घ जीवी है ॥ ९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्य कोऽपि न

विद्यते ॥ अजागलस्तनस्येव तस्य ज-न्म निरर्थकम् ॥ १० ॥

छंद–धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष महँ, एकहु नाहीं जाको अजा कण्ठ सम स्तन पयोधर, जन्म व्यर्थ है ताको ॥ १० ॥

[अर्थ] जिसके धर्म अर्थ काम मोक्ष में एकभी नहीं है। बकरी के गले के स्तन के समान उसका जन्म व्यर्थ है ॥ १० ॥

दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाःपरयशोऽग्नि ना ॥ अशक्तास्तत्पदं गन्तु ततो निंदां प्रकुर्वते ॥ ११ ॥

छंद–दहत मनक पर कीर्ति तीव्र अति, तिहि पद लहन माँहिं असमर्थ ॥ नीच महा पर निंदा कारक, करत ताहि की निन्दा व्यर्थ ॥ ११ ॥

अर्थ–नीच पुरुष अत्यंत तीव्र दूसरे की कीर्ति रूप अग्नि से जलते हुए, उसकी योग्यता का जाने को असक्त होते हैं तिसी से उसकी निन्दा करते हैं ॥ ११ ॥

वन्धाय विषयासङ्गो मुक्तौ निर्विषयं

मन. ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो ॥ १२॥

(छंद) बन्धन हेतु सदा विषयन मन, विषय रहित करन निर्वान मनही है मनुष्य गन केरो, कारन बंधर मोक्ष महान ॥ १२ ॥

अर्थ–विषयों की संगति बंधन के निमित्त है । विषयों से रहित मन मुक्ति का कारण है ॥ मनुष्योंके बंधन तथा मोक्ष का कारण मन ही है । १२ ॥

देहाभिमाने गलिते ज्ञानेन परमात्मन ॥ यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधय ॥ १३ ॥

दोहा–परम पुरुषके ज्ञानते, नष्ट गर्वने गात ।
तिन नित होति समाधि है, जहां जहां मन जात १३

अर्थ–देहाभिमानके नष्ट होनेसे परमात्मा के ज्ञान से जहाँ जहाँ मन जाता है । तहाँ तहाँही समाधि है ॥ १३ ॥

ईप्सित मनस सर्वं कस्य संपद्यते सुखम् ॥ दैवायत्तं यत सर्वं तस्मात्सन्तोषमाश्रयेत् ॥ १४ ॥

छंद–मन चाहे सुख सकल मामहीं, होय भहीं यो चाहीं
तिहि ते गहहि तोष नर जिहि ते, दैव वश्य सब माहीं ॥ १४ ॥

अर्थ–मनका इच्छित सब सुख किसको प्राप्त होसके जिससे कि सब दैवके आधीन है तिससे संतोष का आश्रय करे ॥ १४ ॥

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम ॥ तथा यच्च कृत कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ १५ ॥

छंद–सहसन धेनु मध्यहीं बछरा, जात मातु ढिग जैसे।
कर्म कियो जो सो कर्ता के, गमनत पाछे तैसे ॥ १५ ॥

अर्थ–जैसे सहस्र गायोंमें बछड़ा माताके समीप जाता है। तैसे ही जो किया हुआ कर्म है, सो कर्ता के पीछे जाता है ॥ १५ ॥

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम् ॥ जनो दहति संसर्गाद्वनं संगविवर्जनात् ॥ १६ ॥

छंद–मनवांस्थित कार्यन कर्ता कहँ,सुख न जनम मन मांहीं
दहत संगते जन समूह अरु, सग हीन मन मांहीं ॥ १६ ॥

अर्थ–अनवस्थित कार्य कर्ता पुरुष को न मनुष्योंमें न मन में सुख होता है । संसर्ग से मनुष्य दहता है तथा उनके त्याग से दहता है ॥ १६ ॥

यथा खात्वा खनित्रेण भूतले वारि विन्दति ॥ तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७ ॥

छंद–भूतल महँ जल प्राप्त होत है, खन कुदारिहि जैसे
सेवाकारी शिष्य गुरू की, विद्या पावत तैस ॥ १७ ॥

अर्थ–जैसे कुदाल से खोदने में भूमितल में वारि प्राप्त होता है । वैसेही गुरूका करनेवाला शिष्य गुरू की विद्या को प्राप्त होता है । १७ ॥

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥ तथापि सुधियश्चार्याः सुविचार्यैव कुर्वते ॥ १८ ॥

छंद—पुरुषन कृत अनुसार होत फल, मतिहो कृत अनुसार। कारज करत विचार यदपि नर, महा सु विज्ञउदार ॥ १८ ॥

अर्थ—पुरुषों के कर्मानुसार फल होता है, बुद्धि कर्म के अनुसार होती है। तथापि बुद्धिमान महात्मा भी भली प्रकार विचार कर कार्य करते हैं ॥ १८ ॥

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्य स्वदारे भोजने घने ॥ त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयो ॥ १९ ॥

छंद—त्रय माँहीं संतोष करहि कृत, धन भोजन अरु निज तिय माँहीं। विद्याभ्यास दान अरु जप महँ, उचित तोष करनो कृत नाँहीं ॥ १९ ॥

अर्थ—अपनी स्त्री में, भोजन में, धन में, तीनों में संतोष कर्तव्य है, विद्याभ्यास में, जप में दान में, तीनों में संतोष न करना चाहिये ॥ १९ ॥

एकाक्षरप्रदातार यो गुरु नाभिवदते ॥ श्वानयोनिशत भुक्त्वा चाण्डालेष्वाभिजायते ॥ २० ॥

छंद-इक अक्षर दातार गुरू कहँ, करत प्रणाम न जोई।
श्वान योनि शत भोगि रात है चौंडाल्न महँ सोई ॥ २० ॥

अर्थ-जो एक अक्षर सिखाने वाले गुरूका प्रमाण नहीं करता। वह कुत्ता की सौ योनि भोगकर चौंडालों में जन्म लेता है ॥ २० ॥

युगांते प्रचलेन्मेरुः कल्पांते सप्तसागराः साधवः प्रतिपन्नार्थो न चलंति कदाच न ॥ २१ ॥

छंद-चलित मरु कल्पांत होत अरु, सागर सप्त चलित कल्पांत ॥ सहहिं न चलित होत कबहूं पर, सार्य प्रतिज्ञ विज्ञ जन शांत ॥ २१ ॥

अर्थ-युगान्त में सुमेरु चलायमान होगा, कल्पान्त में सप्त सागर चलायमान होजायेंगे प्रतिज्ञा किये अर्थ वाले साधु कभी चलायमान नहीं होते ॥ २१ ॥

इतिश्री चाणक्य नीतौ शिवदास पाँडेय,
विरचित भाषाटीकायां
त्रयोदशोऽध्यायः १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४॥

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ॥ मूढैःपाषाणखंडेषु रत्नसंख्या विधीयते ॥ १ ॥

दोहा—अन्न वारि भाषण शुभग, महि त्रय रत्न प्रधान। खड पखानन महँ करत, रत्न विधान अयान ॥ १ ॥

अर्थ—जल, अन्न; तथा अच्छा भाषण पृथ्वीमें तीन रत्नहैं, ज्ञानहीनोंने पत्थरके खंडोंमें रत्नोंकी संख्या विधानकीहै ॥१॥

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् ॥ दारिद्र्यरोगदुःखानि बंधनव्यसनानि च ॥ २ ॥

दोहा—आत्म दोष तरु फल अहहि, तनधारिन यह रोग दारिदता बंधन तथा, जगत व्यसन अरु शोग ॥२॥

अर्थ—दारिद्रता, रोग तथा दुःख, बंधन और व्यसन, यहदेह धारियोंके अपने अपराध रूपी वृक्षके फल हैं ॥ २ ॥

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही ॥
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः॥३

दोहा–धनपुनि तियपुनि धरणिपुनि, मित्र फेरि है जाँय
यहसब फिरिके मिलतपर, मिलत देह पुनि नाँहि ॥३॥

अर्थ धन फिर होजाता है, मित्र फिर होजाते हैं। स्त्री फिर होजाती है। पृथ्वी फिर होजाती है॥ यह सब फिर मिल जाते हैं॥ शरीर बारबार नहीं मिलता॥ ३॥

बहूनां चैव सत्वानां समवायो रिपुंजयः
वर्षाधाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते॥४

दोहा–रिपुन जयी है जात है, बहु जीवन समुदाय ।
वारिद वर्षा धार धर, तृणसन रोक्यो जाय ॥ ४ ॥

अर्थ–बहुतसे जीवोंका समुदाय शत्रुको जीतनेवाला होता है वर्षाकी धारा धारण करनेवाला मेघ तृणोंसेभी निवारण किया जाता है॥ ४॥

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनाग-

पि ॥ प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥ ५ ॥

(छंद) तय नारि महँ दानपन महँ, ज्ञानी शठ गँवार।
शास्त्र प्राज्ञ महँ वस्तु शक्तितः, स्वयं लहत विस्तार ॥ ५ ॥

अर्थ—जलमें तेल, दुष्टपुरुषमें गुप्त बात, पात्रमें दान बुद्धिमानमें शास्त्र थोड़ा भी हो। तो वस्तुकी शक्तिके अनुसार आप ही विस्तारको प्राप्त होता है। ५ ॥

धर्माख्याने श्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत् ॥ सा सर्वदैव तिष्ठेच्चेत्को न मुच्येत बंधनात् ॥ ६ ॥

छंद—धर्मकथा महँ अरु मसान महँ, रोगिन को मति होय।
तौ न होय जग बंधमुक्तको, रहहि सदा जो सोय ॥ ६ ॥

अर्थ—धर्मके आख्यानमें, श्मशानमें, और रोगियोंकी जो मति होती है। जो वह सदाही स्थित रहे। तो संसारके बंधनसे कौन नहीं मुक्त होगा ॥ ६ ॥

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृ-

शी ॥ तादृशी यदि पूर्वं स्यात्कस्य न स्यान्महोदय ॥७॥

छंद–पश्चाताप भये ते मर श्री, बुद्धि होति है जैसी। वैभव हाय महान न का नो, प्रथम होय जो वैसी ॥ ७ ॥

अर्थ–पश्चाताप के उत्पन्न होनेपर जैसी बुद्धि हाती है वैसी मा पहले हा। तो कि सीच। महान वैभव न हागा ।७ ॥

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये ॥ विस्मयो नहि कर्तव्या बहुरत्ना वसुंधरा ॥८॥

छं –नहीं क रन आश्चर्य चरित कृत,विनय शूरता तप करदान नीति तथा विज्ञान मौहिं है, बहुधा वसुध रत्न महान ॥ ८ ॥

अर्थ–दान में तप में, शूरता में, विज्ञान में, विनय में, नीति में आश्चय नहीं करना चाहिये । क्योंकि पृथ्वी महान रत्न धारिनी है ॥ ८ ॥

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मन सि-स्थित ॥ यो यस्य हृदये नास्ति स-मापस्थोऽपि दूरत ॥९॥

दोहा—जो जाके मन माँहि है, दूरि दूरि नहिं तौन।
वह समीप रहि दूरि अति, नहिं जिहिके मन जौन॥

अर्थ—जो जिसके मन में स्थित है वह दूर होने पर भी दूर नहीं है। और जो जिसके हृदयमें नहीं है। वह समीप स्थित भी दूर है॥ ९॥

यस्माच्च प्रियमिच्छेत्तु तस्य ब्रूयात्सदा प्रियम्॥ व्याधो मृगवधं गन्तुं गीतं गायति सुस्वरम्॥ १०॥

छंद—कहहि सदा प्रियतासु हित जाको चाहहि, सन प्रियकारी बात।
गवत व्याधा गीत मधुर स्वर, मारन मृगा हित जात॥ १०॥

अर्थ—जिससे प्रियकी इच्छा करे, उससे निरन्तर प्रिय कहे॥ मृगके मारने को जाता हुआ व्याध मधुर स्वर से गीत गाता है॥ १०॥

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदाः॥ सेव्यतां मध्यभागेन राजा वह्निर्गुरुः स्त्रियः॥ ११॥

दोहा—कारण नाश समीप अति, फलद दूरि अति नाहिं

मध्य भाग नृप सेइये, गुरु पावक तिय कोहि ॥ ११ ॥

अर्थ—बहुत समीप होनेसे विनाशके हेतु होते हैं। बहुत दूर होनेसे फलदायक नहीं ॥ इससे राजा अग्नि, तथा गुरु तथा स्त्रियोंकी मध्यभागसे सेवाकरना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्निराप स्त्रियो मूर्ख सर्पो राजकुला-
नि च ॥ नित्य यत्नेन सेव्यानि सद्य
प्राणहराणि षट् ॥ १२ ॥

दोहा—अग्नि वारि तिय मूर्ख अहि, प्राण विनाशनहार।
यह षट सेइय यत्न सो, तुरतहि वश भुवार ॥ १२ ॥

अर्थ—अग्नि, जल, स्त्री मूर्ख, सर्प तथा राजकुलके लोग, ये छः तुरन्तही प्राणोंके हरनेवाले हैं ॥ इससे यत्नसे सेवने चाहिये ॥ १२ ॥

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्म स-
जीवति ॥ गुणधर्मविहीनस्य जीवित
निष्प्रयोजनम् ॥ १३ ॥

दोहा—धर्म जाहि महँ जियतसो, गुण जिहि जीवत सोय

हीन धर्म गुण पुरुषको, जियब व्यर्थेही होय ॥१३॥

मर्थ-जिसके गुण हैं वह जीवित है जिसके धर्म है वह जीवित है गुण तथा धर्म विहीन पुरुषका जीना व्यर्थ है॥

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ॥ पुरा पंचदशास्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥ १४ ॥

दोहा एकहि कृत सन जगत कहँ, करन चहत वश जोय प्रमत पंचदश प्रथम इन रोकहिं मति कहँ, सोय ॥१४

अर्थ-जो एकही कर्मसे संसार वश करनेकी इच्छा करता है, वह पहिले इन पन्द्रहोंमें विचरती बुद्धिका निवारण करे॥ १४॥

प्रस्तावसदृशं वाक्यं प्रभावसदृशं प्रियम् ॥ आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति सपण्डितः ॥१५॥

दोहा-वाक्य प्रसंग समान अरु प्रिय प्रभाव समजोय क्रोध आत्म सम जानजो, अहहि सो पंडित सोय १५

अर्थ-प्रमाणक समान पाकर प्रभातक सदृश प्रिय, अपनी यौवि मनार कार मा मारग ने ग रह पौद्र है ॥ १५ ॥

एकएवो रदार्थम्नु त्रिया भवति वीक्षित ॥ कुणप कामिनी मांस योगिभि कामिभि श्वभि ॥ १६ ॥

दद-इक पदाथ एत्रय विधि इवि, छत्रो मांसबपु स्वान कामी ध्यान नारिवारी जाम्या योगिन मृतक समान ॥ १६ ॥

अर्थ-एक ही पदार्थ योगियोंन मृतकरूपस, कामियोंन स्त्री रूपसे कुत्तेन मांसरूपस, एव तीन प्रकारसे होता है दता है ॥ १६ ॥

सुसिद्धमौषध धर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुन कुभुक्त कुश्रुत चैव मतिमान्न प्रकाशयेत ॥ १७ ॥

१ दोहा-सिद्धि औषधी छिद्रग्रह, रति अरु असन मलीन श्रवित बहु यप धर्म कहूँ, प्रगट न करहि प्रवीन १६

अर्थ-सिद्धऔषध धर्म, घरका, घरके छिद्र, कोई

निम्मित भोजनको, सुनेहुये पुरे वचनको, मतिमान प्रकाश न करे ॥ १७ ॥

तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलैश्चैव वासराः ॥ यावत्सर्वजनानन्ददायिनी वाक् प्रवर्तते ॥ १८ ॥

दोहा—पिकते तबलग मौनते; दिवस बिताये जात ।
जबलग सबजन मोदकर, होत गिरा मृदु प्रात॥१७॥

अर्थ—कोकिलों द्वारा तबतक दिन मौनताके बिताये जाते हैं । जबतक सब पुरुषोंको आनन्द देनेवाली वाणी प्राप्त होती है ॥ १८ ॥

धर्म धन च धान्य च गुरोर्वचनमौषधम् सुगृहीत च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥ १९ ॥

दोहा—धर्म वचन गुरु धान्य धन, औषधि भले प्रकार।—
गृहण कीजिय ठ यथा, होत प्राण संहार ॥ १९ ॥

अर्थ—धर्म, धन, तथा धान्य, और गुरुका वचन तथा और

पथ्य भी अवश्य ग्रहण करना चाहिये। अन्यथा प्राण हानि होती है ॥ ११ ॥

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यतः ॥

दोहा–खल सँग तजकर साधु सँग, पुण्य कीजिये नित्य।
नित्य ईश सुमिरन करै, रहै यही देह अनित्य ॥

अर्थ–दुर्जन दुष्टोंकी सङ्गतिको तज, साधुओंकी संगति का सेवनकर, दिनरात पुण्यकर, इस अनित्य शरीरसे नित्य ईश्वरका स्मरणकर ॥ २० ॥

इतिश्री चाणक्यनीतौ शिवदास पाण्डेय कृत भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु ॥ तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः ॥ १ ॥

दोहा–द्रवीभूत चित दयाते, सब प्राणिन महँ जाहि।
ज्ञान मोक्ष तेहि मुक्ति ते, जटा भस्म ते ताहि ॥ १ ॥

अर्थ–सर्व प्राणियोंमें दयासे जिसका चित्त द्रवीभूत है। उसको ज्ञानसे, मोक्षसे तथा जटा तथा भस्मलेपनसे क्याहै॥

एकमेवाक्षर यस्तु गुरु शिष्यं प्रबोधयेत ॥ पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्य यद्दत्वा चानृणी भवेत ॥ २ ॥

दोहा–इक अक्षर उपदेशहि,शिष्य कौहिं गुरु जौन।
उऋण होय दै जाहि कहैं,द्रव्य न महि महें,तौन॥२

अर्थ–जो गुरु शिष्यको एक अक्षरही उपदेश करता है। पृथ्वीमें वह द्रव्य नहीं है। जिसको देकरभी–शिष्य उऋण होजाय ॥ २ ॥

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया ॥उपानन्मुखभगो वा दूरतो वा विसर्जनम् ॥ ३ ॥

दोहा–कौंटे को अरु खलनको,प्रतिफल उभय विधान
जूतेहि ते त्यागन तथा, मुख मर्दन पदत्रान ॥ ३ ॥

अर्थ-दुर्योग, काटोक्त प्रामिक र दो प्रकारसे ही है। चूते ? मुख मेंजन करना, या दूरस त्याग देना॥ ३॥

कुचैलिन दन्तमलोपधारिण बव्हाशिन निष्ठुरभाषिण च॥ सूर्योदये चास्तमिते शयानं विमुचाति श्रीयदि चक्रपाणि ॥४॥

[छंद] सोवमहाग प्रात संध्या अरु, कटु बचबहु आहारी। मरयुत दंत कुचलिहिं त्यागत, रमा चक्र यदि धारी॥ ४॥

अर्थ-मलीन वस्त्र धारण व रम धारेको, मलीन दाँत वाले को, बहुत खान वाले का, निष्ठुर भाषण करने हारे को सूर्योदय तथा सूर्यास्त में सोनेवाले को लक्ष्मी त्यागदेती है चाहे चक्रपाणि भी हों॥ ४॥

त्यजति मित्राणि धनैर्विहीनं दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च॥ त चार्थवत पुनराश्रयते ह्यर्थो हिलोके पुरुषस्य बंधु

छंद-सेवक नारि मित्र बाँधव जन,धन विहीन जन कहँ तामे देत

लोक माँहि नर बंधु भनहि धन,धन युत तिहि पुनि आश्रय ल्य

अर्थ—मित्र धन रहित को त्याग देते हैं। और स्त्रियें, सेवक और मित्रगण भी त्याग देते हैं। और धन सहित उसको फिर आश्रय करते हैं। लोक में धनही पुरुष का बन्धु है॥ ५॥

अन्यायोपार्जित द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति॥ प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति॥ ६॥

दोहा—दश सम्वतलों रहत है, द्रव्यार्जित अन्याय।
प्राप्त वर्ष दश एक महँ,मूल सहित नसि जाय॥ ६॥

अर्थ—अन्याय से उपार्जन किया द्रव्य दश वर्ष तक रहता है। ग्यारहवें वर्ष के प्राप्त होते मूल सहित नष्ट हो जाता है॥ ६॥

अयुक्त स्वामिनो युक्तं युक्तं नीचस्य दूषणम्॥ अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शंकरभूषणम्॥ ७॥

[छंद] नीचन चाग्य अयोग्य होत कह,अनुचित चाग्यहि होत

महान भयो राहुकहं भमिय मृत्यु सम,और भूषण शंकर भगवान ॥ ७ ॥

अर्थ–अयोग्य भी समर्थों को योग्य है। योग्य भी भी (मनुष्य को दूषण है । राहु को अमृत मृत्यु रूप हुआ तथा शंकर को विष भूषण है ॥ ७ ॥

तद्भोजनं यद्द्विजभुक्तशेषं तत्सौहृदं यत्क्रियते परस्मिन् ॥ सा प्राज्ञता या न करोति पापं दंभं विना यः क्रियते स धर्मः

(छंद) वही भक्षन है शेष द्विजन जो,सौहृद वह कर पर धन ओय । जौन दंभ बिन धर्म कहाहि सो, जो अरुकर पाप न मतिवा सोय ॥ ८ ॥

अर्थ–ब्राह्मणोंके भोजन से शेष जो है, वही भोजन है। दूसरे के हेतु किया जाता है, वही सौहार्द है । बुद्धिमानता वही है जो पाप नहीं करती । बिना दंभके जो किया जाता है वही धर्म है ॥ ८ ॥

मणिर्लुठति पादाग्रे काचः शिरसि धा-

येभे ॥ क्रयविक्रयवेलायां काचःकाचो मणिर्मणिः ॥ ९ ॥

दोहा—मणि लोटत पद अग्र महँ, धरी जात शिर कांच।
क्रय अरु विक्रय के समय, मणि मणि काँचहि काँच॥

अर्थ—पाँव के अग्रभाग में रत्न लोटता है । काँच शिर पर धर लिया जाता है परंतु बेचने तथा मोल लेने के समय काँच काँच ही है तथा मणि मणि ही है॥ ९ ॥

अनंतशास्त्रं बहुलाश्च विद्या अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च ॥ यत्सारभूतं तदुपासनीयं हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥ १० ॥

[छंद] विद्या अमित अनन्त शास्त्रहै, अवसर लघु अरु विघ्न अपार। हंस वारि ते क्षीर लेत जिमि सेवन करहु ताप को सार॥ १० ॥

[अर्थ) शास्त्र अनन्त हैं तथा विद्या भी अनन्त है। तथा समय थोड़ा है और विघ्न बहुत हैं। जो सार हो सो सेवन करना चाहिये । हंस जलमें से क्षीर निकाल लेता है॥ १० ॥

दूरागत पथि श्रांत वृथा च गृहमागतम्॥ अनर्चयित्वा यो भुक्ते सवै चाण्डाल उच्यते ॥ ११ ॥

छन्द—मारग थकित दूरते आये, वृथा पधारे धाम मझार। बिन सत्कार कराते जो भोजन, कहा जात वह है चंडार ॥११

[अर्थ] दूर से आये मार्ग से थके हुए तथा निष्प्रयोजन घर आये को बिना सत्कार किये जो खाता है। वह निश्चय चांडाल कहा जाता ॥ ११ ॥

पठंति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः ॥ आत्मानं नैव जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा ॥ १२ ॥

दोहा—शास्त्रन पढे अनेक अरु, पढे चारिहूं वेद।
पाक रसहिं जिमि करछुली, जान न आतम भेद ।१२

[अर्थ] चारों वेदों को तथा बहुत से शास्त्रों को पढते है। और आत्मा को नहीं जानते। जैसे करछी पके हुए पदार्थ के रस को ॥ १२ ॥

धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवा र्णवे ॥ तरन्त्यधोगताः सर्वे उपरिस्थाः पतन्त्यधः ॥ १३ ॥

दोहा—धन्य नाव विपरीत द्विज, यहि भवसिंधु मंझार। ऊपर थित सो गिरत अध, अध थित हों पार॥ १३॥

अर्थ—संसारसागर में विपरीत चलने वाली ब्राह्मण रूप नौ का धन्य है नीचे स्थित हुये सब तर जाते हैं। ऊपरमें स्थित होने वाले नीचे गिरते हैं॥ (इस श्लोक का भावार्थ यह है कि ब्राह्मणों के अपमान कर्ताओं का नाश होता है तथा उनसे नम्र रहने वाले संसार सागर से तर जाते हैं॥ १३॥

अयममृतनिधानं नायकोऽप्योषधीना ममृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः ॥ भवति विगतरश्मिर्मंडलं प्राप्य भानोःपरसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति

छंद—अमिय धामरु ईश अमिय वपु प्रभावान शशि रवि

मद ॥ भाय कांति विहीन होत पर घर मैं, भाय कहा नहि को लघुताय ॥ १४ ॥

अर्थ—अमृत का स्थान औषधियों का नायक अमृत रूप शरीर धारी, कांति युक्त यह चन्द्रमा सूर्य मंडल में प्राप्त होकर निस्तेज होता है दूसरे के घर जाकर कौन लघुता नहीं पाता ॥ १४ ॥

अलिरयं नलिनीदलमध्यग कमलिनी मकरंदमदालस. ॥ विधिवशात्परदेश-मुपागतःकुटजपुष्परस बहु मन्यते१५

छंद—यह रहि भ्रमर मध्य कमलिनि महँ कमलिनि मद रस मत्तताय विधि वशात परदेश जाय सो, मानत कुटज मैं अधिकाय ॥ १५ ॥

अर्थ—यह भ्रमर कमलिनीके मध्य में प्राप्त होकर कमलिनी के मकरंद के मद में आलसी रहता था प्रारब्ध वशात परदेश को प्राप्त हुआ कौरैयाके फूलके रसको बहुत मानता है१५

पीत-क्रुद्धेन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन ऐपादाबाल्याद्द्विप्रवर्यै. स्ववदनवि

वरे धार्यते वैरिणी मे गेहं मे छेदय-
न्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं
तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं
नाथ युक्तं त्यजामि ॥ १६ ॥

(छप्पय] जौन क्रुद्धके अमित, पान पितु करि डारयो
जौन क्रुद्धके अमित, कान्त पीतस को मारयो ॥
वर विप्रन मुख विवर, धारयते मम अरि बानी ॥
करत वास है सदा, परम विद्याकी खानी ॥
उमाकान्त पूजा निमित्त, मम गृह नित छेदन करत ।
ताते मैं अति खिन्न मन, वर विप्रन गृह परिहरत॥१६॥

अर्थ—कोपका मात्र जिनसे मेरे पिताको पान कर लिया कोपसे मेरे स्वामी का चरण से ताडन किया ॥ मेरे ब्राह्म, जो द्वारा बाल्यपन से ही अपने मुख रूप विवरमें मेरी वैरि णी (सरस्वती] धारण की जाती है पार्वती पतिकी पूजाके निमित्त जो मेरे घरको प्रतिदिन छेदन करते रहते हैं हे नाथ! इस कारण निरंतर खिन्न हुई मैं योग्य ब्राह्मणों कुलके गृहों को त्यागती हूँ ॥ १६ ॥

बंधनानि खलु संति बहूनि प्रेमरज्जुकृ
तबंधनमन्यत ॥ दारुभेदनिपुणोऽपि ष
डंघ्रिर्निष्क्रियो भवति पंकजकोशे १७॥

दो०–बंधन निश्चय भनित अहहिंपर, प्रेमरज्जु कृतबंधन और
भिदित काष्ठ भेदमहँ कुशली, निष्क्रिय कमल कोशमहँ भौंर

अर्थ–निश्चयकरके बहुतसे बंधन हैं। परन्तु प्रेम रज्जुका बंधन औरही है। जिसके कारण काष्ठके भेदनेमें चतुर भौंरा कमलकलीमें व्यापार रहित होजाता है ॥ १७॥

छिन्नोपि चंदनतरुर्न जहाति गंधं वृद्धो
ऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम ॥ य
न्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः क्षी-
णोपि न त्यजति शीलगुणान्कुलीनः १८

दो०–श्रीखंड छिन्न नहिं त्यागत है सुवास।
देही न यंत्र महँ ऊख तजै मिठास ॥
बूढो महान गज त्यागत नाहिं लीला।
त्यागे कुलीन नाहिं क्षीण गुणादि शीला ॥

वरे धार्यते वैरिणी मे गेहं मे छेदय-
न्ति प्रतिदिवसमुमाकांतपूजानिमित्तं
तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं
नाथ युक्तं त्यजामि ॥ १६ ॥

(छप्पय] जौन कुटुम्बके अमित, पान पितु करि डारयो ।
जौन कुटुम्बके अमित, तात पीतम को मारयो ॥
घर विप्रन मुख विवर, वाल्यते मम अरि वानी ॥
करत वास है सदा, परम विद्याकी खानी ॥
उमाकान्त पूजा निमित, मम ग्रह नित छेदन करत ।
ताते मैं अति खिन्न चित, अब विप्रन ग्रह परिहरत ॥ १ ॥

अर्थ—कोषका मात्र मिलके मेरे पिताको पान कर लिया कोषके मेरे स्वामी को चरण से ताडन किया ॥ मेह नाथ, जो द्वारा बाल्यपन से ही अपने मुख रूप विवरमें मेरी बैरि णी (सरस्वती] धारण की जाती है पार्वती पतिकी पूजाके निमित्त जो मेरे घरको प्रतिदिन छेदन करते रहते हैं हे नाथ! इस कारण निरंतर खिन्न हुई मैं योग्य ब्राह्मणों के कुलके घरों को त्यागती हूं ॥ १६ ॥

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत ॥ दारुभेदनिपुणोऽपि षडंघ्रिर्निष्क्रियो भवति पंकजकोशे १७॥

अर्थ–बन्धन निश्चय अनेक हैं, परन्तु प्रेमबन्धन और ही है, काष्ठ भेदनमें निपुण भी भ्रमर कमलके कोशमें और निष्क्रिय हो जाता है। जिसके कारण काष्ठ भेदनमें चतुर भौंरा कमलकोशमें व्याकुल होकर रह जाता है ॥ १७ ॥

छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्न जहाति गन्धं वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम् ॥ यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः क्षीणोऽपि न त्यजति शीलगुणान्कुलीनः १८

अर्थ—काटाहुआभी चंदन वृक्ष गंधको नहीं त्यागता । वृद्ध गजराजभी लीलाको नहीं त्यागता ॥ यन्त्रमें पेरीहुई ईख रसको नहीं त्यागती कुलीन पुरुष क्षीण होनेपरभी शीलादि गुणोंको नहीं त्यागते ॥ १८ ॥

उर्व्यां कोपि महिधरो दोर्भ्यां धृतो लीलया तेन त्वं दिवि भूतले च विदितो गोवर्द्धनोद्धारक ॥ त्वां त्रैलोक्यधर वहामि कुचयोरग्रे न तद्गण्यते किंवा केशव भाषणेन बहुना पुण्यैर्यशो लभ्यते ॥ १९ ॥

छंद—महि मंडल बिच कोउ एक, लघु पर्वत ताही ।
दोऊ करन उठाय लियो, केशव लीलाही ॥
ताते सुरगण लोक तथा महि मर्त्य महाना ।
गोवर्धनधर विदित नाम तुम है भगवाना ॥
धरत कुचाग्रन तुमहिमैं, गनत न कोउ तिहि त्रिजगधर ।
बनि भाषण है कहा, पुण्यहि ते यश लहत नर ॥ १९ ॥

सर्प-पृथ्वीपर कोई एकअस्पष्ट छोटी पर्वत क्रीडापूर्वक धारण कर लिया। इसीसे तुम स्वर्गमें तथा मृतक्में गोवर्धन धारक विदित हो। त्रिलोकीके धारण करनेवाले तुमको अपने। स्तनोंके अग्रभागमें धारण करती हूं। सो नहीं गिना जाता॥ ६८८॥ बहुत कहनेसे क्या है, पुण्यहीसे यश प्राप्त होता है॥

इतिश्रीपावयनीतो शिवदास पौढय कृत भाषा-
टीकायां पंचदशोऽध्यायः॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

न ध्यात पद॰ ईश्वरस्य विधिवत्ससार विच्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटु-धर्मोऽपि नोपार्जित ॥ नारिपीनपयोधरोरुयुगल स्वप्नेपि नालिंगित मातु॰ केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्

(छप्पय] भवसागर से मुक्त हेत विधिवत गतिपाई ॥

ध्यान न कीनों चरण कमल प्रभु जग सुखदाई।
खोल न स्वर्ग कपाट द्वार महँ निपुण सुधर्मा।
ताके संचित हेतु कियो नहिं कछु शुभकर्म॥
तियगनके कुच पुष्ट शुभ, उरु आलिंगन न कियो।
यौवन जननी हेतु वन, हम कुठार को वपु दियो॥

अर्थ-संसारसे मुक्त होनेके निमित्त विधिपूर्वक ईश्वरके चरणोंका ध्यान न किया स्वर्गद्वारके कपाट खोलनेमें निपुण धर्म भी उपार्जित न किया स्त्रियोंके पुष्ट स्तन तथा जंघाओंको स्वप्नमेंभी आलिंगन न किया हम केवल माताके यौवनरूप वनके छेदनेके लिये कुठाररूप हुये॥ १॥

जल्पति सार्द्धमन्येन पश्यत्यन्य सवि-
भ्रमा ॥ हृदये चिंतय त्यन्य न स्त्री-
णामेकतो रति ॥२॥

दोहा-संग कहै पर कहँ लखति, आनहुग वसराति।
हृदय ध्यान कछु कौ कहौ, इक प्रियमें तिय जाति॥२॥

अर्थ-दूसरे के संग बात करती है। दूसरे को विलास पूर्वक देखती है॥ हृदय में और का ध्यान करती है। स्त्रियों की एकसे प्रीति नहीं॥ २॥

यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मयि कामिनी ॥ स तस्या वशगो भूत्वा नृत्येत्क्रीडाशकुंतवत् ॥ ३ ॥

दोहा-यह तिय मम रत मोह से, मानत खल इमि जौन।
क्रीडा विहग समान शठ, नाचत तिय वश तौन ॥ ३॥

अर्थ-यह स्त्री मुझ से प्रसन्न है, जो मूढ मोह से ऐसा मान लेवे। वह उस स्त्री के वशीभूत होकर पाले पक्षी के समान नाचता है॥ ३॥

कोऽर्थान्प्राप्य न गर्वितो विषयिण कस्यापदोऽस्तंगता स्त्रीभि कस्य न खंडितं भुवि मन को नाम राजप्रिय ॥ क कालस्य न गोचरत्वमगमत्कोऽर्थी

ध्यान न कीनों चरण कमल प्रभु जन सुखदाई।
खोल न स्वर्ग कपाट द्वार महँ निपुण सुधर्म।
ताके संचित हेतु कियो नहिं कछु शुभकर्म॥
तियगनके कुच पुष्ट शुभ, उरु आलिंगन न कियो।
यौवन जननी हेतु बस, हम कुठार को वपु लियो॥

अर्थ-संसारसे मुक्त होनेके निमित्त विधिपूर्वक ईश्वरके चरणोंका ध्यान न किया स्वर्गद्वारके कपाट खोलनेमें निपुण धर्म भी उपार्जित न किया स्त्रीके दोनों पुष्ट स्तन तथा जंघाओंको स्वप्नमेंभी आलिंगन न किया हम केवल माताके यौवन रूप वनके छेदनके लिये कुठाररूप हुये॥ १॥

जल्पति सार्द्धमन्येन पश्यत्यन्यं सविभ्रमा॥ हृदये चिंतयत्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः॥ २॥

दोहा-भंग दृष्टि पर कहँ लखति, आन संग बतराति। हृदय ध्यान कछु औ कहीं, इक प्रेमी नहिं जाति॥२॥

नेर्मिता केन न दृष्टपूर्वा न श्रूयते
मयी कुरंगी ॥ तथापि तृष्णा रघु-
नस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥५

रचित न काहू प्रथम सुनी नहिं, सुनी न कंचन मृगीशरीर
काल विपरीति होति मति, भइ तथापि तृष्णा रघुबीरा॥५॥
-किसी करके भी निर्माण न की गई । न पहिले देखी न
गई, की सुवर्ण की हरिणी होती है । तथापि रामचंद्रजी
तृष्णा हुई । विनाश काल में विपरीत बुद्धि होती है ॥ ५ ॥

पौरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थि-
। प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं
रुडायते ॥ ६ ॥

दोहा—गौरवता गुणते लहत, आसन ते रह नाँहिं ।
... वायस गरुडहो, देवल मस्तक माँहिं ॥ ६ ॥

...ण से उत्तमता को प्राप्त होते हैं, आसन पर
... नहीं होत ... ऊपर बैठा हुआ कौआ

गतो गौरवं को वा दुर्जनदुर्गुणेषु पतित क्षेमेण यात पथि॥ ४॥

(कबित्त) भयो अभिमानी नहिं पाय धन कौन जग,
कौन विषयी की सब बिपति नशानी है।
खंडित भयो न मन काको जग नारिन ते,
नृप गन केरो जग कौन प्रिय प्राणी है॥
काल की अगाधरता पायो जग कौन ऐसो,
भयो यहि जगत प्रपञ्च बीच ज्ञानी है।
पाइ गुरुताई कौन मगन जगत पंथ,
कुशल पधारो कौन नीच गुण मानी है॥४॥

अर्थ—धन को पाकर कौन अभिमानी न हुआ। किस विषयी की आपत्तियें अस्त हुई॥ भूतल में स्त्रियों द्वारा किसका मन खंडन न हुआ। राजाओं का प्रिय कौन है। काल की अगोचरता को कौन प्राप्त नहीं हुआ। कौन भीखमंगा गुरुताई प्राप्त हुआ। या दुर्जन अवगुणों में पड़कर कुशल पूर्वक संसार मार्ग में कौन गया॥ ४॥

न निर्मिता केन न दृष्टपूर्वा न श्रूयते हेममयी कुरंगी ॥ तथापि तृष्णा रघुनंदनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ५

छंद-रचित न काहू प्रथम ऐसी नहिं, सुनी न कंचन मृगीशरीर माश्काल विपरीति होति मति, भई तथापि तृष्णा रघुबीर॥५॥

अर्थ-किसी करके भी निर्माण न की गई। न पहिले देखी न सुनी गई, की सुवर्ण की हरिणी होती है। तथापि रामचंद्रजी को तृष्णा हुई। विनाश काल में विपरीत बुद्धि होती है॥५॥

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥ ६ ॥

दोहा—गौरवता गुणते लहत, आसन तेलह नाँहिं।
बैठि न वायस गरुडहो, केवल मस्तक माँहिं ॥ ६ ॥

अर्थ-गुण से उत्तमता को प्राप्त होत हैं, आसन पर बैठने से प्राप्त नहीं होते। महलके ऊपर बैठा हुआ कौआ क्या गरुड हो सकता है॥६॥

गतो गौरवं को वा दुर्जनदुर्गुणेषु पति
त क्षेमेण यात पार्थि॥ ४॥

(कवित्त) भयो अभिमानी नहिं पाय धन कौन जग
कौन विषयी की सब विपति नशामी है
खंडित भयो न मन काको जग नारिन ते
नृप गम केरो जग कौन प्रिय प्रानी है ।
काल की अगोचरता पायो जग कौन ऐसो
भयो यहि जगत प्रपच बीच ज्ञानी है
पाइ गुरुताई कौन मगन जगत पंथ,
कुशल पधारो धाम नीच गुण मानीहै॥ ४॥

अथ–धन पा पाकर कौन अभिमानी न हुआ । किस विषयी का आपत्तियें अस्त हुईं ॥ भूतल में स्त्रियों द्वारा किसका मन खंडन न हुआ । राजाओं प्रियतम है काल का पारगता को कौन प्राप्त नहीं हुआ । कौन भीगन का गुरुतापन प्राप्त हुआ । या दुर्जन अवगुणों में पड़कर कुशल पूर्वक संसार मार्ग में कौन गया ॥ ४॥

न निर्मिता केन न दृष्टपूर्वा न श्रूयते हेममयी कुरंगी ॥ तथापि तृष्णा रघुनंदनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ५

छंद-रचित न काहू प्रथम लखी नहिं, सुनी न कंचन मृगीशरीर नाशकाल विपरीति होति मति, भइ तदापि तृष्णा रघुबीरा॥५॥

अर्थ-किसी करके भी निर्माण न की गई। न पहिले देखी न सुनी गई, की सुवर्ण की हरिणी होती है। तथापि रामचन्द्रजी को तृष्णा हुई। विनाश काल में विपरीत बुद्धि होती है॥५॥

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थिता प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥ ६ ॥

दोहा-गौरवता गुणते रहत, आसन मेरुह नाहिं। बैठि न वायस गरुड हो, देवल मस्तक माँहिं ॥ ६ ॥

अर्थ-गुण से उत्तमता को प्राप्त होता है, आसन पर बैठने से प्राप्त नहीं होता। मंदिर के ऊपर बैठा हुआ कौआ क्या गरुड हो सकता है॥ ६ ॥

गुणाः सर्वत्र पूज्यंते न महत्योऽपि संपदः ॥ पूर्णेंदुः किं तथा वंद्यो निष्कलंको यथा कृशः ॥७॥

दोहा—पूज्य होत गुण ठाम सब, सम्पति नाँहि महान।
कहु पूर्ण शशि वंद्य तिमि, जिमि द्वितिया शशि मान॥७॥

अर्थ—सब स्थान में गुण पूजे जाते हैं। बड़ी बड़ी सम्पत्तियें, नहीं पूजी जातीं। क्या पूर्ण चन्द्र किसही प्रकार वन्दना किया जाता है जैसे कलंक रहित क्षीण द्वितिया का चंद्रमा॥ ७॥

परस्तुतगुणो यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत् ॥ इंद्रोऽपि लघुतां याति स्वयंप्रख्यापितैर्गुणैः ॥ ८॥

छंद—अपरन जिहि गुण कीन प्रशंसा, अगुण गुणी हूजाई।
निज गुण निज मुख कथन किये ते, इंद्र लहत लघुताई ॥ ८॥

अर्थ—जो दूसरों ने जिसके गुणों की स्तुति की है वह निर्गुण भी गुणी हो जाता है। अपने आप कथन किये गुणों से इंद्र भी लघुता को प्राप्त होता है॥ ८॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणा यांति मनोज्ञताम ॥ सुतरा रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम ॥ ९ ॥

[छंद] ज्ञानी कौंहिं प्राप्त गुण पावत, अतिशय सुंदर ताहीं।
सुवरन हीरा जटित रहत है, सुंदरता अधिकाई ॥ ९ ॥

अर्थ—ज्ञानी को प्राप्त हुए गुण मनोहरता को प्राप्त होते हैं। सुवर्ण व जड़ा हुआ हीरा अत्यंत शोभा को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

गुणे सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रय ॥ अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥ १० ॥

दोहा—बिन अधार दुख लहत अकेरो,
गुण सर्वज्ञ सु ईश समान।
चहत सदा आश्रय कंचन को,
मौल्यवान अति रत्न महान ॥ १० ॥

अर्थ—गुणों में सर्वज्ञ परमेश्वर के समान भी, अकेला

गुणाःसर्वत्र पूज्यंते न महत्योऽपि संपदः ॥ पूर्णेंदु किं तथा वंद्यो निष्कलंको यथा कृश ॥ ७ ॥

दोहा—पूज होत गुण ठाम सब, सम्पति नाँहिं महान। कहु पूर्ण शसि वंद्य तिमि, जिमि द्वितिया शसि मान॥ ७॥

अर्थ—सब स्थान में गुण पूजे जाते हैं। बड़ी बड़ी सम्पतियें नहीं पूजी जातीं। क्या पूर्ण चन्द्र तिसही प्रकार वंदना किया जाता है जैसे कलंक रहित क्षीण द्वितिया का चंद्रमा ॥ ७ ॥

परस्तुतगणो यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत् ॥ इंद्रोऽपि लघुतां याति स्वयंप्रख्यापितैर्गुणैः ॥ ८ ॥

छंद—अपरन जिहि गुण कीन प्रशंसा, अगुण गुणी हैजाई। निज गुण निज मुख कथन किये ते, इंद्र लहत लघुताई ॥ ८ ॥

अर्थ—जो दूसरा से जिसके गुणों की स्तुति की है यह निर्गुण भी गुणी हो जाता है। अपने आप कथन किये गुणों से इंद्र भी लघुता को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणा यांति मनोज्ञताम ॥ सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम ॥ ९ ॥

[छंद] ज्ञानी कोहि प्राप्त गुण पावत, अतिशय सुंदर ताई।
सुवरन हीरा जटित सहत है, सुंदरता अधिकाई ॥ ९ ॥

अर्थ—ज्ञानी को प्राप्त हुए गुण मनोहरता को प्राप्त होते हैं। सुवर्ण में जड़ा हुआ हीरा अत्यंत शोभा को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

गुणे सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रय ॥ अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥ १० ॥

दोहा—बिन अधार दुख लहत अकेलो,
गुण सर्वज्ञ सु ईश समान।
चहत सदा आश्रय कंचन को,
मौल्यवान अति रत्न महान ॥ १० ॥

अर्थ—गुणों में सर्वज्ञ परमेश्वर के समान भी, अकेला

आश्रयहीन दुःखी होता है। बड़े मोल का भी रत्न सुवर्ण के आश्रय की इच्छा करता है॥ १०॥

अतिक्लेशेन ये अर्था धर्मस्यातिक्रमेण तु॥ शत्रूणां प्रणिपातेन ते अर्था मा भवंतु मे॥ ११॥

दोहा—अति दुख ते अति क्रमण धर्म ते,
प्राप्त होनि है सम्पति जौन।
शत्रु वर्ग कहँ नमन किये ते,
मिलहि मोहिं जनि सम्पति तौन॥ ११॥

अर्थ जो धन अत्यंत क्लेश से, तथा धर्म के अति क्रमण करने से, तथा शत्रुओं को प्रणाम करने से प्राप्त होते हैं। वे धन मेरे निमित्त न होवें॥ ११॥

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला॥ या तु वेश्येव सामान्या पथिकै रपि भुज्यते॥ १२॥

दोहा–तिहि लक्ष्मी कहँ कीजियका जौन वधू सम आहि।
या वेश्या वत सर्व प्रिय, रमा पथिक सन जाहि ॥१२॥

अर्थ–उस लक्ष्मी से क्या किया जाय, जो केवल वधू के समान है। या जो वेश्या के समान सर्व साधारण है जो पथिक जनों से भी भोगी जाती है ॥ १२ ॥

धनेषु जीवितव्ये च स्त्रीषु चाहारकर्मसु ॥ अतृप्ता प्राणिनः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च ॥ १३ ॥

दोहा–धन महँ जीवन तियन महँ, भोजन कारज माँहि।
असन्तुष्ट सब जन गये, जात सकल अरु जाँहिं॥१३॥

अर्थ–धन में जीवन में, तथा भोजन में सब प्राणी असन्तुष्ट गए, जाते हैं। और जायेंगे ॥ १३ ॥

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रिया ॥ न क्षीयते पात्रदानमभयं सर्वदेहिनाम् ॥ १४ ॥

दोहा—यज्ञ होम बलि कर्म अरु, नष्ट होत सब दान।
अभयदान देहिम सकल, नशत न पात्र सुदान॥ १४॥

अर्थ—यज्ञ होम बलिदानादि कर्म, तथा सम्पूर्णदान क्षीण हो जाते हैं। सत्पात्र को दिया हुआ दान,तथा सब देह धारियोंको अभयदान देना; नहीं नष्ट होता॥ १४॥

तृण लघु तृणात्तूल तूलादपि च याचकः॥ वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति॥ १५॥

छंद—सब ते तृण लघु तूल तृणहुँ ते तस्हु ते लघु याचक माहि। यह माते याचना करहि जनि, पवन यादि विथि ले नहिं जाहि॥ १५॥

अर्थ—सबसे लघु तृण है। तृण से लघु रुई है॥ और याचक रुई से भी लघु है॥ यह पवन से क्यों नहीं उड़ाया जाता। वह समझता है कि यह मुझसे याचना करेगा॥१५॥

वरं प्राणपरित्यागो मानभंगेन जीवनात॥ प्राणत्यागे क्षण दुःख मानभंगे दिने दिने॥ १६॥

छंद–मानभंग जीवन भल नाहिं पर,प्राण त्याग वर अहई।
प्राण त्याग छिन देत शोक भल,मानभंग नित दहई ॥ १६ ॥

अर्थ–मानभंग होने से जीवनसे प्राण परित्याग श्रेष्ठ है।
प्राण त्याग के समय क्षण मात्र क्लेश होता है॥ पर मानभंग
होनेसे प्रतिदिन क्लेश होता है ॥ १६ ॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यति जन्तव ॥ तस्मात्तदेव वक्तव्य वचने किं दरिद्रता ॥ १७ ॥

छंद–प्रिय भाषण ते मुदित होत हैं सबरु जगतके प्रानी।
ताते भाषण उचित करन सुइ, का दरिद्रता बानी ॥ १७ ॥

अर्थ–प्रिय वचन बोलने से सब प्राणी संतुष्ट होते हैं। इसे
कारण वह ही कहना चाहिये। वचन की क्या दरिद्रता है॥१७॥

संसारकटुवृक्षस्य द्व फले अमृतोपमे ॥ सुभाषित च सुस्वाद संगति सुजने जने ॥ १८ ॥

दोहा–अमिय सरिस फल उभय वर, यदि कटुतरु संसार।

दोहा—यज्ञ होम बलि कर्म अरु, नष्ट होत सब दान। अभयदान देहिन सकल, नशत न पात्र सुदान॥ १४॥

अर्थ—यज्ञ होम बलिदानादि कर्म, तथा सम्पूर्णदान क्षीण हो जाते हैं। सत्पात्र को दिया हुआ दान, तथा सब देह धारियों को अभयदान देना; नहीं नष्ट होता॥ १४॥

तृण लघु तृलात्तूल तूलादपि च याचकः॥ वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति॥ १५॥

छंद-सब ते तृण लघु तूल तृणहुँ ते तूलहु ते लघु याचक आहि। यह जाते याचना करहि जनि, पवन याहि किमि ले नहिं जाहि॥ १५॥

अर्थ—सबसे लघु तृण है। तृण से लघु रुई है॥ और याचक रुई से भी लघु है॥ यह पवन से क्यों नहीं उड़ाया जाता। वह समझता है कि यह मुझसे याचना करेगा॥ १५॥

वरं प्राणपरित्यागो मानभंगेन जीवनात॥ प्राणत्यागे क्षणं दुःखं मानभंगे दिने दिने॥ १६॥

छंद-मानभंग जीवन भल नहिं पर,प्राण त्याग वर भाई।
प्राण त्याग छिन देत शोक अरु,मानभंग नित दाई ॥ १६ ॥

अर्थ-मानभंग होने से जीवनसे प्राण परित्याग श्रेष्ठ है। प्राण त्याग के समय क्षण मात्र क्लेश होता है॥ पर मानभंग होनेसे प्रतिदिन दुःख होता है ॥ १६ ॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यति जन्तव ॥ तस्मात्तदेव वक्तव्य वचने किं दरिद्रता ॥ १७ ॥

छंद-प्रिय भाषण ते सुखित होत हैं सबही जगतके प्रानी।
ताते भाषण उचित वचन मृदु, का दरिद्रता बानी ॥ १७ ॥

अर्थ-प्रिय वचन कहने से सब प्राणी संतुष्ट होते हैं। इसी कारण वह ही कहना चाहिए। वचन की क्या दरिद्रता है॥१७

ससारकटुवृक्षस्य द्व फले अमृतोपमे ॥ सुभाषित च सुस्वाद सगति सुजने जने ॥ १८ ॥

दोहा-अमिय सरिस फल उभय पर,यदि कटुतरु संसार।

बचन स्वाद युत सुभ मधुर, संगति सुमन उदार॥१८॥

अर्थ—संसार रूपी कटु वृक्षके अमृत के समान दो फल हैं सुस्वादिष्ठ सुवचन तथा भले पुरुषों की संगति ॥ १८ ॥

वहुजन्मसु चाभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः॥ तेनैवाभ्यासयोगेन देहमभ्यस्यते पुनः ॥ १९ ॥

छंद—बहु जनमन अभ्यास कियो तप, दान अध्ययन कोई। पुनि अभ्यास वाग के द्वारा प्राप्त होत सम सोई ॥ १९ ॥

अर्थ—बहुत से जन्मों में अभ्यास किया हुआ दान, अध्ययन तथा तप उसी अभ्यास योग द्वारा फिर भी देह को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम्॥ उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥ २० ॥

छंद—जो विद्या पुस्तकन माँहि है अरु, पर हस्तन धन जोई। समय काज आवत नहिं वह, विद्या नाहिं धन सोई ॥ २० ॥

अर्थ—जो विद्या पुस्तकों में है, और जो धन पराये हाथमें है । कार्यके उत्पन्न होने के समय न वह विद्या है, न धन है ॥ २० ॥

इतिश्री चाणक्यनीतौ शिवदास पाण्डेय विरचित भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

पुस्तकप्रत्ययाधीत नाधीत गुरुसन्निधौ॥ सभामध्ये न शोभते जारगर्भा इव स्त्रिय ॥ १ ॥

दोहा—पुस्तक ही तें पठित अरु पठित नहीं गुरु पाँह।
जार गर्भ तिय सम सरिस, सोह सभा महँ नाँहि॥ १ ॥

अर्थ—पुस्तक की प्रतीति से पढ़ा हुआ तथा गुरुके समीप न पढ़ा हुआ शास्त्र जार गर्भ धारिणी स्त्रियोंके समान सभाके मध्यमें शोभा को प्राप्त नहीं होता ॥ १ ॥

कृते प्रतिकृतिं कुर्याद्धिंसने प्रतिहिंसन-

म् ॥ तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत ॥ २ ॥

छंद—कीजे प्रति उपकार करे जो, अपने संग भलाई। हने हने तिहि दोष नहीं तिहि, सठ सम सम ह भलाई ॥ २ ॥

अर्थ—उपकार करने पर प्रत्युपकार करे, मारने पर वहीं दोष नहीं है, दुष्ट से दुष्टता करे ॥ २ ॥

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्। तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ३ ॥

दोहा—दूर बसत जो दूर जो, दुराध्य है जौन। दुरतिक्रम तप ताहि ते, सकल सुलभ तप तौन ॥ ३ ॥

अर्थ—जो दूर है, जो दुराराध्य है। जो दूर स्थित है सब तप से सुलभ है, जिससे कि तप दुरतिक्रम है ॥ ३ ॥

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किंपातकैः सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥ सौजन्यं-

यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मं-
डनैः सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्य-
स्ति किं मृत्युना ॥ ४ ॥

[छप्पय] अवगुण ते है काह, लोभ जो मनमें रहई।
काह पाप ते हानि, पिशुनता जो नर गहई ॥
तप ते है कह काम, सत्यता जो मन माँहीं ।
जो पवित्र मन अहै, काम तीरथ ते नाँहीं ।
कह गुण तेजो सुजनता, भूषनतेकहजो सुयश।
सद्विद्याजोधन कहा, कहामरणते जोअयश ४

अर्थ-जो लोभ है, तो अवगुणों से क्या है। जो चुगली है तो पातकों से क्या है। जो सत्य है, तो तप से क्या है, जो पवित्र मन है, तो तीर्थ से क्या है। जो सुजनता है। तो गुण से क्या है ॥ जो सुमहिमा है तो भूषणोंसे क्या है। जो भली विद्या है तो धन से क्या है। जो अपयश है, तो मृत्यु से क्या है ॥ ४ ॥

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरी ॥ शङ्खो भिक्षाटनं कुर्यान्नादत्तमुपतिष्ठते ॥ ५ ॥

छंद–जाको पिता जदपि रत्नाकर, रमा भगिनि जिहि माँहि। भिक्षाटन हित फिरत शंख सो बिनु दिय मिलत नाँहि ॥ ५ ॥

अर्थ–जिसका पिता समुद्र है, जिसकी सगी बहिन लक्ष्मी है। वह शंख भीख माँगने के लिये भ्रमण करता है ॥ बिना दिया नहीं मिलता ॥ ५ ॥

अशक्तस्तु भवेत्साधुर्ब्रह्मचारी च निर्धनः ॥ व्याधिष्ठो देवभक्तश्च वृद्धा नारी पतिव्रता ॥ ६ ॥

छंद–साधु होत असमर्थ तथा हो, निर्धन जन ब्रह्मचारी। व्याधि ग्रस्त हर भक्त होत नर, पतिव्रत बूढ़ी नारी ॥ ६ ॥

अर्थ–असमर्थ तो साधु होता है, और निर्धनी ब्रह्मचारी होता है। और व्याधि ग्रस्त देव भक्त होता है, और बूढ़ी स्त्री पतिव्रता होती है ॥ ६ ॥

नान्नोदकसमं दानं न तिथिर्द्वादशीसमा ॥ न गायत्र्याः परो मन्त्रो न मातुर्दैवतं परम् ॥ ७ ॥

दो०-अन्न वारि सम दान आन नहिं, तिथि नहिं अरु द्वादशी समान।
गायत्री से परम मंत्र नहिं, माता से नहिं देव महान ॥ ७ ॥

अर्थ-अन्न जल के समान दान नहीं है। द्वादशी के समान तिथि नहीं है। गायत्री से श्रेष्ठ मंत्र नहीं है तथा माता से अधिक श्रेष्ठ देवता नहीं है ॥ ७ ॥

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकाया विषं शिरः ॥ वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वांगे दुर्जनो विषम् ॥ ८ ॥

दो०-विष है शीश माछि के, है सर्प माहिं विष दंतन मेंही।
वृश्चिक के विष रहत पूछ महँ, दुर्जन विष सब देही ॥ ८ ॥

अर्थ-सर्प के दांत में विष रहता है, मक्खी के सिर में विष रहता है। बिच्छू की पूंछ में विष रहता है। तथा दुर्जन के सर्वांग में विष रहता है ॥ ८ ॥

पत्युराज्ञां विना नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥ आयुराहरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत ॥ ९ ॥

दोहा—पति आज्ञा बिन रहत व्रत, अरु उपास तिय जौन।
हरति आयु पतिकी तथा, नरक जाति तिय तौन ॥९॥

अर्थ—पति की आज्ञा के बिना जो नारी उपासादि व्रत करती है। वह नारी पतिकी अवस्था का हरती है तथा नरक को जाती है ॥ ९ ॥

न दानैः शुद्ध्यते नारी उपवासशतैरपि ॥ न तीर्थसेवया तद्वद्भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥ १० ॥

छंद—नहिं शतशत उपवास दान से, शुद्ध होति तिय जौंहीं।
होत शुद्ध नहिं तीर्थ गमन सन, जिमि पति पद जल सौंहीं॥१०॥

अर्थ—स्त्री न सैकड़ों दान न सैकड़ों उपवास से शुद्ध होती है। न तीर्थ सेवासे शुद्ध होती है, जैसे स्वामी के चरणोदक से शुद्ध होती है ॥ १० ॥

पादशेषं पीतशेषं संध्याशेषं तथैव च॥ श्वानमूत्रसमं तोयं पीत्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ११ ॥

छंद—पीने से बचा शेष शेष जल पग धोवन से जोई ।
श्वान मूत्र सम ताहि पिये नर, कर चौंद्रायण सोइ ॥ ११ ॥

अर्थ—पाँव धोने से बचा हुआ, पीने से बचाहुआ इसी प्रकार संध्या से बचा हुआ जल श्वान के मूत्र के समान है॥ उसे पीकर चान्द्रायण व्रत करे॥ ११ ॥

दानेनपाणिर्न तु कंकणेन स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन॥ मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन ज्ञानेन मुक्तिर्नतुमण्डनेन ॥ १२ ॥

छंद—कर दान होत पवित्र कंकन, किये पावन नाँहि ।
स्नान ते शुचि होत चन्दन, मले नाहिं तन माँहि ॥
मान सन हो तृप्ति भोजन, किये से नाहिं होत ।
श्रृंगार से निर्वान होय न, होय ज्ञान उदोत ॥ १२॥

अर्थ—हाथ दान से शुद्ध होता है, न कि कंकण से, स्नान

से शुद्धता होती है न कि चंदन से, मान से तृप्ति होती है न कि भोजन से, ज्ञान से मुक्ति होती है न कि शृङ्गार से ॥१२॥

नापितस्य गृहे क्षौरं पाषाणे गंधलेपनम्॥ आत्मरूपं जले पश्यञ्छक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ १३ ॥

(दोहा) नापित के गृह क्षौर करावन, देखब जल निज रूप। तन पखान से गंध लगावब, हर सम्पति हर भूप ॥ १३ ॥

अर्थ-नाई के घर में हजामत बनवाना, पाषाण से लेकर गंध लगाना, अपने रूप को जल में देखना कुबेर की भी लक्ष्मी हर लेता है ॥ १३ ॥

सद्य प्रज्ञाहरा तुंडी सद्य प्रज्ञाकारी वचा ॥ सद्य शक्तिहरा नारी सद्य शक्तिकरं पय ॥ १४ ॥

छंद-कुँदरू बुधिहरी हरण करति मति, वच मति कर तत्काल, पय तुरंत बल पावन कारी, शीघ्र हरति बल बाल ॥ १४ ॥

अर्थ-कुँदरू बुद्धि को हरण करता है। वच शीघ्र

ही बुद्धि को बढाती है ॥ स्त्री थीघ्रही शक्ति हरण करती है । दूध तत्काल ही बल बढाता है । १४ ॥

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनयगुणोपेत ॥ तनये तनयोत्पत्ति॰ सुरवरनगरे किमाधिक्यम् ॥ १५ ॥

छंद–नम्रतादि गुण युक्त पुत्र जो लक्ष्मी यदि जो नारी । तनय तनय उत्पत्ति होय यदि, सुर पुर उसका भारी ॥ १५ ॥

अर्थ–जो सुयोग्य स्त्री है और जो लक्ष्मी है ॥ जो नम्रता-दि गुणों से युक्त पुत्र हो। पुत्र के पुत्र की उत्पत्ति है । तो देव-ताओं के नगर में क्या अधिकता है ॥ १५ ॥

परोपकारण येषां जागर्ति हृदये सताम् ॥ नश्यति विपदस्तेषां सपद स्यु पदे पदे ॥ १६ ॥

छंद–जिनप्रत सुजन हियमहँ जागत, निशिदिन पर उपकार। पद पद तिनकहँ मिलति सम्पदा, होति विपति सब छार ॥१६॥

अर्थ–जिन सत्पुरुषों के हृदय में परोपकार जागता

इनकी विपत्तियें नाश होती हैं ॥ तथा पद पद में सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥ १६ ॥

आहारनिद्राभयमैथुनानि समानि चैतानि नृणां पशूनाम् ॥ ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥ १७ ॥

दोहा—असन नींद भय संग तिय, ये पशु नर न समान। ज्ञान हीन पशु सरिस नर, नर महँ अति वर ज्ञान॥ १७॥

अर्थ—आहार, निद्रा, भय, स्त्री, प्रसंग, ये मनुष्यों तथा पशुओं को समान प्राप्त हैं। मनुष्योंको विशेष अधिक ज्ञान प्राप्त है ॥ ज्ञान से हीन मनुष्य पशुकी समान है ॥ १७ ॥

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैर्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या ॥ गण्डयुगमण्डनहानिरेषा भृगा पुनर्विकचपद्मवने वसंति ॥ १८ ॥

तात्पर्य गुणीजनों के तिरस्कार करने से तिरस्कार कर्ता की ही हानि होती है । गुणी जनतो सर्वत्र आदर पाते हैं)

छंद-कर्णताल ते मदरत मालि यदि,मथमसि पो मदमतिगजराज। याह तिहि युग गंडस्थल सति पुनि,भ्रमत कमलवन मधुपसमाज

अर्थ–जेह गजराज से मदान्ध बुद्धि से, कर्ण रूप ताडोंसे मद पीयकी इच्छा वाले भ्रमर जो दूर किये गये हैं । यह उस की ही दोनों गण्डस्थलों क शोभा की हानि है और फिर भी खिले वन में निवास करते हैं ॥ १८ ॥

राजा वेश्या यमश्चाग्निस्तस्करो बाल याचकौ ॥ परदु ख न जानाति अष्टमो ग्रामकंटक ॥ १९ ॥

दोहा याचक शिशु यम अनल अरु गणिका यौवन हार
अष्टम कंटक नगर नृप गनत न शाक परार ॥ १९॥

अर्थ–राजा, वेश्या अग्नि यम, और चोर तथा बालक और याचक, तथा आठवाँ ग्राम वासियों को कष्ट देनेवाला पराये दुख को नहीं जानते ॥ १९ ॥

अथ-पश्यामि किं वाते पतितं तव कि-

भुवि ॥ रेरे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्य मौक्तिकम् ॥ २० ॥

दोहा-बाला नीचे लखतिक्यों, का महि गिरो तिहार।
रे यौवन मुक्तागिरो, रे नहिं जान गँवार ॥ २० ॥

अर्थ-हे बाला ! तू नीचे क्यों देखती है, पृथ्वी में तेरा क्या गिर गया है ॥ १ ॥ रे ! मूर्ख !!! तू नहीं जानता मेरा तारुण्य मौक्तिक गिर गया है ॥ २० ॥

व्यालाश्रयापि विफलापि सकंटकापि-
वक्रापि पंकिलभवापि दुरासदापि ॥
गन्धेन बन्धुरसि केतकि सर्वजतोरेको
गुणः खलु निहंति समस्तदोषान्॥ २१॥

छंद-अहि आश्रित कीचक कंटक युत,
केतकि अफल दुरासद बंक ।
बंधु गंध ते निज जन सबके सम,
एति इकगुणहर अमित कलंक ॥ २१ ॥

अर्थ-सर्पों से आश्रित, भी. फलरहित भी. कंटकयुक्त भी

होती भी, कीचसे उत्पन्न होने वाली भी, दुःख से प्राप्त होने वाली भी है केतकी ? अपनी विमल गंधिके कारण सब प्राणियों का बंधु रूप है ॥ निश्चय एकही गुण सब दोषोंको दूर करता है ॥ २१ ॥

इतिश्रीचाणक्यनीतौ शिवदास पांडेय कृत भाषा-
टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ सम्पूर्णम् ॥

पुस्तक मिलने का पता
प० श्रीधर शिवलाल ज्ञानसागर प्रेस
पोस्ट माहिम—बम्बई

